दो शब्द

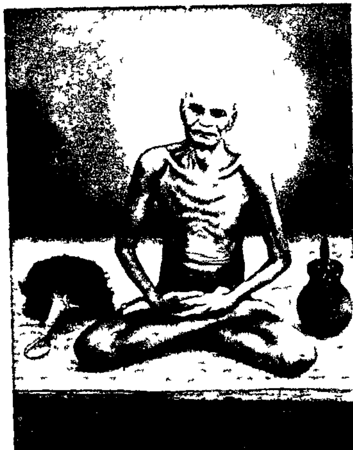
यह परम अध्यात्म मार्तण्ड श्री ब्रह्मचारी [illegible] जी ने बहुत पहले सम्पादित करके रखा था। इसमें समयसार कलश के श्लोक अन्वय अर्थ लिखित किये गये हैं। समयसार महान आध्यात्मिक ग्रंथ है। अध्यात्म की रुचि रखने वाले पुरुषों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। ग्रंथ में षड् द्रव्यों का सुन्दर विवेचन किया गया है। संसार में सभी प्राणी भौतिक चाकचिक्य में मग्न रहकर सुखी बनना चाहते हैं परन्तु आध्यात्मिकता और भौतिकता दोनों भिन्न भिन्न मार्ग हैं दोनों पर प्रवृत्ति न होकर किसी एक पर ही प्राणी की प्रवृत्ति हो सकती है। इसलिये आत्म कल्याण चाहने वालों को अध्यात्मरस का आस्वादन करने के लिये इस ग्रंथ का स्वाध्याय और मनन करना चाहिये। आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिये यह अद्वितीय ग्रंथ है। प्रत्येक अध्यात्म, प्रेमी को यह ग्रंथ सदैव अपने पास रखना चाहिये।

बाबूलाल शास्त्री

प्रकाशक 'जैन गजट' देहली

❁ ॐ ❁

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय निर्ग्रन्थ दि० जैनाचार्य पूज्यपाद
१०८ श्री सूर्यसागरजी महाराज
चतुर्मास पहाड़ी धीरज देहली सं० २००८



जन्मदिवस कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९४० ग्राम प्रेमसर (ग्वालियर)
ऐलक दीक्षा आसोज सुदी ६ सं० १९८१ इन्दौर (मालवा)
मुनिदीक्षा मगसिर वदी ११ सं० १९८१ हाटपीपल्या (ग्वालियर)
आचार्यपद प्राप्ति कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९८५ कोडरमा (बिहार)

॥ श्री वीतरागायनम ॥

आचार्य श्री १०८ सूर्यसागराय नम

परम अध्यात्म मार्तण्ड

(अनुष्टुप)

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकाशते ।
चित्स्वभावायभावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

अन्वयार्थ—(स्वानुभूत्या चकाशते) अपनी अनुभूति के द्वारा प्रकाशमान (चित्स्वभावाय) चैतन्य स्वभाव वाले (भावाय) सत्स्वरूप (सर्वभावान्तरच्छिदे) अपने को छोड़कर सर्व पदार्थों को एक काल में जानने वाले ऐसे (समयसाराय नम: अस्तु) द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म से रहित शुद्ध आत्मा के लिये नमस्कार हो ॥१॥

(अनुष्टुप)

अनंतधर्मणस्तत्त्व पश्यन्तीप्रथगात्मनः ।
अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(अनन्तधर्मण आत्मन:) अनंतधर्म वाली आत्मा के (तत्त्वप्रथकपश्यन्ती) स्वरूप को प्रथक् देखने वाली (अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव) अनेक हैं धर्म जिसम ऐसी मूर्ति हमेशा ही (प्रकाशताम्) प्रकाशमान हो ॥२॥

(मालिनी)

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा—
दविरतमनुभाव्य व्याप्ति कल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते—
र्भवतु समयसार व्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

अन्वयार्थ—(परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावात्) पर परिणति का कारण जो मोहनामा कर्म उसके उदय से (अविरतमनुभाव्य व्याप्ति कल्माषितायाः) निरंतर रागादिक की व्याप्ति से मैली (शुद्धचिन्मात्रमूर्तेः) शुद्ध चैतन्यमात्रमूर्तिकी (अनुभूतेः) अनुभूतिसे (समयसारव्याख्यया) समयसार की व्याख्या से (ममएव) मेरी ही (परमविशुद्धि भवतु) परम विशुद्धि हो ॥३॥

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमते ये स्वयंवान्तमोहाः ।
सपदि समयसार ते परम ज्योतिरुच्चै
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(उभयनयविरोधध्वंसिनिस्यात्पदांके) जो दोनों नयों के विरोध को नाश करने वाली स्यात्पदसे अंकित (जिनवचसिरमन्ते) जिनेन्द्र भगवान्के वचनों में लीन रहते हैं

(स्वय वान्तमोहा) और स्वय वोन गया है मोह जिन्होंका (ते) वे (उच्चैः) महान (पर ज्योति) उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप (अनवम् अनयपक्षाक्षुण्णम्) अनादि कालीन खोटी नयों को नष्ट करने वाले (सपदिएव) शीघ्र ही [समयसार ईक्षन्ते] समयसार को देखते हैं ॥४॥

(मालिनी)

व्यवहरणनयःस्याद्यद्यपिप्राक्पदव्या—
मिहनिहितपदाना हन्त हस्तावलम्बः ।
तदपिपरममर्थंचिच्चमत्कारमात्र
परविरहितमन्तः पश्यता नैपकिंचित् ॥५॥

अन्वयार्थ—(यद्यपि इह प्राक्पदव्याम् निहितपदाना) यद्यपि यह पहली अवस्था म अर्थात् निश्चयनय में रक्खा है पैर जिन्होंने (हन्त) हर्ष है कि (व्यवहारनय हस्तावलम्ब स्यात्) यह व्यवहारनय हस्तावलम्ब हो (तदपिचिच्चमत्कारमात्र) तो भी चेतन्य चमत्कारमात्र (परविरहित) परसे रहित (परममर्थं) श्रेष्ठ अर्थ को (अत) अन्तरगमे (पश्यता) देखती है (एप - किंचित् न) यह कुछ भी कार्यकारी नहीं है ॥५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वेनियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः प्रथक्

सम्यग्दर्शनमेतदेवनियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्त्वानवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तुनः

अन्वयार्थ--(यत् शुद्धनयत. एकत्वे नियतस्य) जो शुद्ध नय निश्चयनय से एकत्त्वम निश्चल (व्याप्तुः) अपने द्रव्यगुण पर्यायोंमें व्याप्त (पूर्णज्ञानघनस्य अस्य आत्मन) पूर्णज्ञानघन इस आत्मा का जो श्रद्धान है सो (दर्शनम्) दर्शन है यह दर्शन अन्य द्रव्यों से पृथक् है (एतदेव सम्यग्दर्शनम्) जितना सम्यग्दर्शन है (अय आत्मा नियमात् तावान्) उतना ही यह आत्मा नियम से है (इमाम् नवतत्त्वम ततिम् मुक्त्वा) यह नवतत्त्व की सतति को छोड़कर (न) हमारे (अयम् एक - आत्मा अस्तु) यह एक आत्मा हो ॥६॥

(अनुष्टुप)

अतःशुद्धनयायत्त प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्वगतत्वेऽपि यदेकत्व न मुंचति ॥७॥

अन्वयार्थ--(यत् अत शुद्धनयायत्त प्रत्यग्ज्योति नव तत्त्वगतत्वेपि चकास्ति) जो इस शुद्धनय का आश्रय करने वाली जो भिन्न ज्योति नव तत्त्वमें प्राप्त होने हुए भी प्रकाशमान है (तत् एकत्वं न मु चति) वह ज्योति एकपनेको नहीं छोड़ती ॥७॥

(मालिनी)

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं ।
कनकमिवनिमग्नं वर्णमालाकलापे ।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं ।
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (चिरम्) अनादि कालीन (नवतत्त्वच्छन्नम्) नवतत्त्व की सतति में छिपी हुई (वर्णमाला-कलापे) वर्णमालाके समुदायमें (निमग्न) डूबे हुए (कनकम् इव) सोने के समान (उन्नीयमान) उठी हुई (सततविविक्त) निरन्तर अलग रहने वाली (प्रतिपदम्) प्रत्येक पद में (उद्योतमानम्) प्रकाशमान (इदम् आत्मज्योति) इस आत्मा की ज्योति को (एकरूप) एक रूप से (दृश्यताम्) देखो ॥८॥

(मालिनी)

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं—
क्वचिदपि च न विद्मो यातिनिक्षेपचक्रं ।
किमपरमभिदध्मोधाम्नि सर्वंकषेऽस्मि—
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

अन्वयार्थ--(नयश्री) नयरूपीलक्ष्मी (न उदयति) उदय को प्राप्त नहीं होती (प्रमाणं) प्रमाण (अस्तम्) अस्तको (एति) प्राप्त हो जाता है (निक्षेपचक्रम्) निक्षेपों का समुदाय (अपि) भी (क्वचित्) कहाँ पर (याति) चला जाता है (न विद्म) यह हम नहीं जानते (अपरम्किम्) और तो क्या (अभिदध्म) कह (सर्वंकषेऽस्मिन्) सबको नीचा करने वाले इस (धाम्नि) चैतन्यरूप तेजके (अनुभवम्) अनुभव के (उपयाते) प्राप्त होने पर (द्वैतम्) द्वैत (एव) ही (न) नहीं (भाति) प्रकाशमान रहता है ॥६॥

(उपजाति)

आत्मस्वभावपरभावभिन्न--
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं ।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं--
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥

अन्वयार्थ--(परभावभिन्नम्) परके भावों से भिन्न (आपूर्णम्) ज्ञान से पूर्ण (आद्यंतविमुक्त) आदि अन्त करके रहित (विलीनसंकल्पजाल) संकल्पक समूहसे रहित (एकं) एक रूप (आत्मस्वभावम्) आत्मस्वभावको (प्रकाशयन्) प्रकाश करता हुआ (शुद्धनय) शुद्धनय (अभ्युदेति) उदय को प्राप्त होता है ॥१०॥

(मालिनी)

न हि विदधति वद्धस्पृष्टभावादयोऽमी—
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्रप्रतिष्ठां।
अनुभवतु तमेव द्योतमान समता—
ज्जगदपगतमोही भूय सम्यक् स्वभाव ॥११॥

अन्वयार्थ—(अमी) ये (वद्धस्पृष्टभावादय) वधे हुए छुवे हुए आदि भाव (स्फुटम् उपरि तरन्त) स्पष्ट रूप मे ऊपर तरते हुए (अपि) भी (एत्य) आकर (यत्रप्रतिष्ठा) जो स्थिति को (हि) निश्चयसे (न) नहीं (विदधति) करते हैं (अपगतमोहीभूय) मोहरहित होकर (सम्यक्स्वभाव) समीचीन स्वभाव वाले (समताज्जगत) चारों तरफ से जगत को (उद्योतमानम्) प्रकाशित करने वाले (तमेव) उसही चैतन्य आत्माका (अनुभवतु) अनुभव करो ॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भूत भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य वन्ध सुधीर्य-
द्यन्तःकिलकोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोह हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्तेध्रुव।
नित्य कर्मकलकपकविकलो देवः स्वय शाश्वतः

अन्वयार्थ—(यदि अपि) कोई भी (सुधी) बुद्धिमान (भूत) हो चुके (भात) हो रहे (अभूतम्) आगे होने वाले (बन्ध) बंधको (रभसात् एव) शीघ्रही (निर्भिद्य) छिन्न भिन्न करके (हठात्) हठसे (मोह) मोहको (व्याहत्य) नाश करके (किल) निश्चयसे (अन्त) अंतरंग (कलयति) लीन होता है (अहो) आश्चर्य है (आत्मानुभवैकगम्यमहिमा) अपने अनुभव से ही जानने योग्य है महिमा जिसकी (व्यक्त) स्पष्ट (नित्यकर्म-कलंकपंकविकल.) हमेशा कर्मकलंकरूपी कीचड़ से रहित (शाश्वत) हमेशा (अयम्) यह (आत्मा नु र) आत्मानिश्चयसे (स्वयं देव आस्ते) स्वयं देव है ॥१२॥

(वसंततिलका)

आत्मानुभूतिरितिशुद्धनयात्मिका या—
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेतिबुद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनिनिवेश्य सु निःप्रकम्प—
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनःसमन्तात् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(शुद्धनयात्मिका) शुद्धनयही है स्वरूप जिसका (इति) ऐसी (या) जो (आत्मानुभूति) आत्मानुभूति है (किल)

निश्चयसे (एव) ही (इय) यही (ज्ञानानुभूति) ज्ञानानुभति है (इति बुद्धया) ऐसी बुद्धिसे (आत्मनि) अपनेमें (सुनि प्रकम्पम्) अतिनिश्चल (आत्मानम्) अपने आत्माको (निवेश्य) लगाकर (समन्तात्) चारो तरफसे (नित्य) हमेशा (अवबोधघन) ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसा (एक आत्मा अस्ति) एक आत्मा ही है ॥१३॥

(पृथ्वी)

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्वहिः
महःपरममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अखण्डितम्) खंडरहित (अनाकुलम्) आकुलता रहित (अन्तर्वहि) अंतरग और वहिरंग (ज्वलत्) प्रकाशमान् (सहजम्) स्वभाव से (उद्विलास) उत्पन्न हुआ अर्थात प्रगट हो चुकी है स्वाभाविक क्रीडा जिसमें ऐसा (अनत) जिसका अ त नहीं ऐसा (परमम् मह') सर्व श्रेष्ठ तेज (सदा) हमेशा (न') हमारे (अस्तु) हो (यत्) जो (चिदुच्छलननिर्भर) चैतन्य के प्रकाश से व्याप्य (लवण-खिल्यलीलायित) लवण की डली की लीला के समान (एक-

रसमुल्लसत्) एक रस को (सकलकालं) सर्वदा (आलम्बते) आलम्बन करता है ॥१४॥

(अनुष्टुप)

एष ज्ञानघनोनित्यमात्मासिद्धमभीप्सुभिः ।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(सिद्धिम् अभीप्सुभि) आत्मसिद्धि को चाहने वाले (नित्यम्) हमेशा (ज्ञानघन) ज्ञानघन रूप से (एष) इस (आत्मा) आत्मा को (साध्यसाधकभावेन) साध्य साधक भाव से (द्विधा) दो भेद रूप होते हुए भी (एक समुपास्यताम्) एक रूप से उपासना कर ॥१५॥

(अनुष्टुप)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(आत्मा) आत्मा (दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वात्) दर्शन ज्ञान चारित्र तीन रूप होने से (मेचक) मेचक (च) और भेदरूप (स्वय एकत्वत) स्वयं एकपनेसे (अमेचक अपि) अभेदरूप भी (अस्ति) है और (प्रमाणत समम्) प्रमाणरूप से समान है ॥१६॥

(अनुष्टुप)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिःपरिणतत्वत ।
एकोऽपित्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेणमेचकः ॥१७॥

अन्वयार्थ—निश्चयनय से (दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभि परिणतत्वत) आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भेदरूप परिणत होता हुआ (एक अपि) एक हो है और (व्यवहारेण) व्यवहार से (त्रिस्वभावत्वात्) तीन स्वभाव वाला होता हुआ (मेचक) मेचक भेदरूप है ॥१७॥

(अनुष्टुप)

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्व ज्योतिषैककः ।
सर्व भावान्तरध्वंसि स्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(परमार्थेनतु) निश्चयनय से तो (व्यक्त ज्ञातृत्व ज्योतिषैकक) प्रगट ज्ञाता ज्योति स्वरूप एक ही है (सर्वभावान्तरध्वंसि स्वभावत्वात्) सर्वपर्यायान्तरों का नाश करने वाले स्वभाव से (अमेचक) अभेदरूप ही है ॥१८॥

(अनुष्टुप)

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९

अन्वयार्थ—(मेचकामेचकत्वयो) मेचक यानि भेदरूप और अमेचक यानि अभेदरूप इन दोनों का (चिन्तया) चिन्ता करना (अलम्) व्यर्थ (अस्ति) है (दर्शनज्ञानचारित्रै) दर्शन ज्ञान चारित्रसे (एव) ही (आत्मन) आत्माकी (साध्यसिद्धि) साधनासे ही सिद्धि होता है (अन्यथा च न) अन्यथा नहीं हो सकती।

(अनुष्टुप)

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया—
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्त चैतन्यचिन्हम्—
नखलु नखलु यस्मादन्यथासाध्यसिद्धिः ॥२०

अन्वयार्थ—(एकताया) एकतासे (अपतितम्) पतित नहीं होने वाले (कथमपि) किंतु (समुपात्तत्रित्वम्) व्यवहार नयसे प्राप्त किया है तीनपने को जिसने (अपि) ऐसे (अच्छम्) स्वच्छ (उद्गच्छत्) प्रकाशमान (अनन्तचैतन्यचिन्हम्) अनंत चैतन्यचिन्हवाले (इद) इस (आत्मज्योति) आत्म तेज का हम (सतत) निरंतर (अनुभवाम) अनुभव करते हैं (यस्मात्) क्योंकि (साध्यसिद्धि) साध्य की सिद्धि (अन्यथा) दूसरी तरह से (नखलु नखलु) निश्चयसे नहीं होती, नहीं होती ॥२०॥

(मालिनी)

कथमपिहि लभन्ते भेदविज्ञानमूला—
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा।
प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावैः—
मुकुरवदविकारा सततं स्युस्त एव ॥२१॥

अन्वयार्थ—(ये) जो (प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावैः) प्रतिबिम्बरूपमे निमग्न अनन्त भावात्मक स्वभावों के द्वारा (स्वत) खुद अथवा (अन्यत) दूसरे के द्वारा (भेदविज्ञान-मूलाम्) भेदविज्ञानप्रधान (अनुभूतिं) अनुभूतिको (हि) निश्चयमे (कथमपि) किसी भी प्रकार (अचलम्) अचलरूप से (लभन्ते) प्राप्त करते हैं। (ते) वे (एव) ही (सतत) निरन्तर (मुकुरवत्) दर्पण के समान (अविकारा) निर्विकार (स्यु) होते हैं ॥२१॥

(मालिनी)

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं ।
रसयतु रसिकाना रोचनं ज्ञानमुद्यत् ॥
इह कथमपि नात्माऽनात्मना साकमेकः ।
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२

अन्वयार्थ—(इदानीं) इस समय (जगत्) जगत (आजन्म-लीढं) जन्मसे लगे हुए (मोहम्) मोहको (त्यजतु) छोड (रसिकाना) रसिक जनों के (रोचन) रुचिकर (उद्यत्) उदीयमान (ज्ञान) ज्ञानका (रसयतु) आस्वादन करें (इहआत्मा) यह आत्मा ससारमे (अनात्मना) अनात्माके (साकम्) साथ (कथमपि) किसी भी तरह से (एक) एक (न) नहीं हो सकता (किल) किन्तु (क्वापि) किसी भी (काले) समय (तादात्म्य-

वृत्तिम्) निष्कम्पताको (कलयति) प्राप्त करता है ॥२२॥

(मालिनी)

अयि कथमपि मृत्वा तत्वकौतूहली स—
अनुभवभवमूर्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम् ॥
पृथगथविलसत स्व समालोक्य येन ।
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोह ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अयि) हे आत्मन (कथमपि) किसी भी प्रकार से (व्यवहार नय से) (मृत्वा) मरकर भी (तत्वकौतूहली) तत्व का है कौतूहल यानि तत्व का चिन्तवन करने वाला (मुहूर्तम्) क्षण भर (भवमूर्त पार्श्ववर्ती) शरीर के पास में रहता हुआ (सन्) और (पृथगथविलसन्त) अलग क्रीडा करने वाले (स्व) अपनेको (समालोक्य) देखकर (अनुभव) अनुभवकर (येन) जिससे (मूर्त्या) शरीर के (साकम्) साथ (एकत्वमोह) एकपने के मोह को (झगिति) शीघ्र ही (त्यजसि) छोड़ सके ॥२३॥

(शार्दूल विक्रीडित)

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशोधाम्नानिरुन्धन्तिये
धामोद्दाममहस्विना जनमनोमुष्णन्तिरूपेण ये ।

दिव्येनध्वनिनासुख श्रवणयो.साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्
वन्द्यास्तेऽष्टमहसूलक्षणधरा स्तीर्थेश्वराःसूरयः२४

अ वयार्थ– (ये) जो (कान्त्या) शारीरिक कांति से (एव) ही (दशदिश) दशो दिशाओ को (स्नपयन्ति) निर्मल करते हैं (स्नान कराते हैं) (ये) जो अपने (धाम्ना) तेज से (महस्विना) महत्पुरुषो के तेज को (उद्दामधाम्) अपने तज से (निरुन्धन्ति) नीचा कर देते हैं। (ये) जो [रूपेण] रूपसे [जनमन] मनुष्योके मनको [मुष्णन्ति] आकर्षित करते हैं। [ये] जो [दिव्येनध्वनिना] मनोहर दिव्यध्वनिसे (साक्षात्) साक्षात [श्रवणयो] कानो का [सुखं] सुखकारी [अमृतम्] अमृतको [क्षरन्त] कराते हैं [ते] व (अष्टमहस्रलक्षणधरा) एक हजार आठ लक्षणों को धारण करने वाले (तीर्थेश्वरा) तीर्थंकर [सूरय] आचार्य [वन्द्या] वंदना करने योग्य हैं ॥२४॥

(आर्या)

प्राकारकवलिता वरमुपवन राजीनिगीर्ण भूमितल
पिवतीव हि नगरमिद परिखा वलयेन पाताल ॥२५

अ वयार्थ–[प्राकारकवलिताम्बरम्] परकोटामे ग्रस लिया है आकाशको जिसने [उपवनराजी] बागकी पंक्ति [निगीर्ण भूमितलं] निगला है भूमितल को जिसने ऐसा ऊंचा [इदनगर] यहनगर [हि] निश्चय से [परिखा वलयेनपाताल] खाईमंडलसे

पातालको [इर्वापिनति] ही मानो पी रहा है ॥२८॥

(आर्या)

नित्यमविकारसुस्थित,सर्वा गमपूर्वसहजलावण्य
अन्तोभमिवसमुद्र जिनेन्द्ररूप पर जयति ॥२६॥

अन्वयार्थ—(नित्यमविकारसुस्थितसर्वागम्) हमेशा विकाररहित समीचीन रूपसे स्थित है सर्वाङ्ग जिसका (अपूर्वसहजलावण्य) अपूर्व स्वाभाविक है सौन्दर्य जिसका (पर जिनेन्द्ररूप) श्रेष्ठ जिनेन्द्रदेव का रूप (अक्षोभम्) क्षुब्ध नहीं होने वाले (समुद्र इव) समुद्रके समान (जयति) जयवान रहे ॥२६॥

॥ अथ निश्चय व्यवहाररूप स्तुति काव्य ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्व व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोनिश्चय
न्नुःस्तोत्र व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न
तत्तत्त्वतः । स्तोत्रनिश्चयतश्चितोभवतिचित्स्तुत्यैव
सैवभवेन्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांग-
योः ॥२७॥

अन्वयार्थ—(कायात्मन व्यवहारत) काय और आत्मा के व्यवहारनय से (एकत्व) एकपणा है (निश्चयात्) निश्चयनय से (तु) सो (न) नहीं है (तु) और (वपुष.स्तोत्र) शरीरका स्तोत्र

(व्यवहारत) व्यवहारनय से होता है (तत्त्वत) यह स्तोत्र निश्चयनय से शरीर की (स्तुत्या न) स्तुति से नहीं होता (स्तोत्र निश्चयतश्चित भवति) स्तोत्रनिश्चयनयसे उस चैतन्य का होता है (एवं स चित् स्तुत्य एव) इस तरह वह चैतन्य ही स्तुति करने योग्य हो सकता है (अत तीर्थंकर स्तव उत्तरबलात्) इसलिये तीर्थंकरभगवान के स्तवन के बल से (आत्मागयो एकत्वन) आत्मा और शरीर म एकपना नहीं हो सकता ॥२७॥

(मालिनी)

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकताया—
नयविभजन युक्त्यात्यतमुच्छादिताया ।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्यकस्य—
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुरन्नेक एव ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(इति परिचिततत्त्वै) इस प्रकार जान लिया है वस्तु तत्त्वको जिन्होंने ऐसे सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा (नयविभजन युक्त्या) नय के विभागरूप युक्ति से अर्थात् निश्चयनय से (आत्मकायैकताया) आत्मा और शरीर की एकता को (अत्यन्त) सर्वथा (उच्छादिताया) उड़ा देने पर (अद्यएव) इस समय ही (बोध) ज्ञान (कस्य) किस ज्ञानी पुरुष के (बोधम्) आत्मज्ञान को (न) नहीं (अवतरति) उत्पन्न करता है (अपितु) किंतु (सर्वस्य) सभीके उत्पन्न करता है

(अत) इसलिये (स्वरसरभसकृष्ट प्रस्फुरन् आत्मा एक एव) अपने आत्मीय रस के वेग से खींचा हुआ अत्यंत प्रकाशमान आत्मा एक ही (अस्ति) है ॥२८॥

(मालिनी)

अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगा—
दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ॥
झटिति सकल भावैरन्यदीयैर्विमुक्ता—
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

अन्वयार्थ—(अपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टि) परभावों के छोड़ने की दृष्टान्त दृष्टि (यावत्) जबतक (अत्यन्तवेगात्) बहुत शीघ्रता से (वृत्ति) वृत्ति अर्थात् स्थिरता को (अनवम्) यथार्थतया अर्थात् यथार्थ स्वरूप जैसे बने वैसे (न अवतरति) नहीं प्राप्त करती है (तावत्) तबतक (झटिति) शीघ्र ही (अन्यदीयै) दूसरे (सकलभावै) सम्पूर्ण भावों से (विमुक्ता) रहित (इयम् अनुभूति) यह अनुभूति अर्थात् स्वानुभव (स्वय आविर्बभूव) स्वत प्रगट हो जाता है ॥२९॥

(स्वागता)

सर्वत. स्वरसनिर्भरभाव, चेतये स्वयमहं स्वमिहैक। नास्ति नास्तिमम कश्चन मोहः, शुद्धचिद्घन महोनिधि रस्मि ॥३०॥

अन्वयार्थ—(मत्तः) सब तरफसे (स्वरसनिर्भरभावं) आत्मीकरससे परिपूर्ण हैं भाव जिसके ऐसे (स्वं) अपनी आत्मा को (इह) इस लोक में (अहं) मैं (स्वयं) स्वतः (एकं) एक अर्थात् अद्वितीय (चेतये) जानता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ (मम) मेरे अर्थात् शुद्ध आत्मा के (कश्चन) कोई भी (मोहो नास्ति) मोह नहीं है (नास्ति) नहीं है (अहं तु) मैं तो (शुद्धचिद्घनमहोनिधिः) शुद्ध चैतन्यघन तेज का खजाना (अस्मि) हूँ ॥३०॥

(मालिनी)

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके—
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं ।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः—
कृतपरिणति रात्माराम एव प्रवृत्तः ॥३१॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (सर्वैः) समस्त (अन्यभावैः) अन्य भावों अर्थात् कर्मोपाधि जनित समस्त विकार भावों के (सह) साथ (विवेके) भेदके (सति) होने पर (अयम्) यह (उपयोग) चैतन्यका परिणमन (स्वयं) स्वतः (एकं) एक अर्थात् असहाय अद्वितीय (आत्मानं) आत्मा को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (प्रकटितपरमार्थैः) प्रगट हो गया है श्रेष्ठ स्वरूप जिनका ऐसे (दर्शनज्ञानवृत्तैः) दर्शन ज्ञान और चारित्र

से (कृतपरिणति) क्रिया है परिणमनको जिसने (एव भूत) ऐसा (स उपयोग) वह उपयोग (आत्मारामे) आत्माका आराम अर्थात् विश्राम स्थान में (एव) ही (प्रवृत्त) प्रवेश करता है ॥३१॥ (वसततिलका)

मज्जन्तुनिर्भरममी सममेव लोकः—
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण—
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः ॥३२॥

अ न्वयार्थ—(अमी) ये (समस्त) सभी (लोक) जीव (आलोक) लोकपर्यं त अथवा (आलोक्यथास्यात्तथा) सर्वथा स्पष्ट रूप जैसे बने तैसे (उच्छलति) उछलने वाले अर्थात् तरगित (शान्तरसे) शान्तरूपरसम (सममेव) एकसाथही (निर्भरं) अत्यन्त रूपसे (मज्जन्तु) डूब अर्थात् गोते लगावें (विभ्रमतिरस्करिणीं) मोहरूपी आवरण को (भरेण) अतिशय शक्ति से (आप्लाव्य) दूरकर (अवबोधसिन्धु) ज्ञानरससमुद्र (एष) यह (भगवान्) आत्मा (प्रोन्मग्न) प्रगट हुआ है ॥३२॥

नृत्य कुतूहल तत्वको, मरियवि देखो धाय
निजानद रसमें छको, आन सबै छिटकाय

॥ इति पूर्वरगाधिकार समाप्तम ॥

॥२॥ अथ जीवाजीवाधिकार लिख्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा-
नाससारनिबद्धबन्धनविधिध्वसाद्विशुद्ध स्फुटत्-
आत्मारामममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदित
धीरोदात्तमनाकुलविलसति ज्ञान मनोह्लादयत् ।१

अन्वयार्थ—(जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा) जीव और अजीव के विवेक से परिपुष्ट दृष्टि से (पार्षदान्) सभासदों अर्थात् भव्य जीवों को (प्रत्याययत्) समझाता हुआ (आससार निबद्धबंधनविधिध्वसात्) अनादि ससार से बधे हुए बधन के विधान के विनाश से (विशुद्ध) अतिनिर्मल (स्फुटत्) स्फुरायमान (आत्मारामम्) आत्मा ही है क्रीडा स्थान अर्थात् उपवन जिसका (अनतधाम महसा) अनन्तधाम तेजरूप (अध्यक्षेण) प्रत्यक्षसे (नित्योदित) सर्वदा उदित रहने वाला (धीरोदात्त) अविकृत विशाल (अनाकुलम्) आकुलता से रहित (मन) मनको (ह्लादयत्) आनन्दित करता हुआ (ज्ञान विलसति) ज्ञान विलास करता है अर्थात् शोभित होता है ॥१॥

(मालिनी)

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन—
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य परमासमेकं ॥

हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो—
ननुकिमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥२॥

अन्वयार्थ—(विरम) दूर रहो (अपरेण) दूसरे (अकार्य कोलाहलेन) निष्प्रयोजन वार्तालाप से (किं) क्या प्रयोजन (स्वय अपि) खुद भी (निभृत) निश्चल (सन्) होता हुआ (स्वयं एकं) तू एक (पण्मास) छह माह (पश्य) देख (पुद्गलात्) पुद्गलसे (भिन्नधाम्ना) पृथक है तेज जिसका अथवा स्थान जिसका ऐसे (पुंसः) पुरुष आत्मा के (हृदयसरसि) मनरूपी तालाबमें (ननु) निश्चयसे (किं) क्या तो (अनुपलब्धि) अप्राप्ति (किं च) और क्या (उपलब्धि भाति) प्राप्ति मालूम पड़ती है ॥२॥

(अनुष्टुप)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयं।
अतोऽतिरिक्ताःसर्वेऽपि भावाःपौद्गलिकाअमी ॥३

अन्वयार्थ— (चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसार) चेतना रूप शक्ति से भरा हुआ है सर्वस्वसार जिसका ऐसा (अयं) यह (जीव) आत्मा (इयान्) इतना अर्थात् चैतन्य स्वरूप (अस्ति) है (अत) इससे (अतिरिक्ता) पृथक (अमी) ये रागादि (सर्वेपि) सभी (भावाः) परिणाम (पौद्गलिका) पुद्गल सम्बन्धी (सन्ति) हैं ॥३॥

(मालिनी)

सकलमपिविहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्व च चिच्छक्तिमात्र ।
इममुपरि चरन्त चारु विश्वस्य साक्षात्—
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्त ॥४॥

अन्वयार्थ—(चिच्छक्तिरिक्त) चैतन्य शक्ति से शून्य (सकलमपि) सभी भावों को (अह्नाय) शीघ्र (विहाय) छोडकर (चिच्छक्तिमात्रं) चैतन्य शक्ति प्रमाण (स्वच) अपनी आत्मा को (स्फुटतरम्) अत्यन्त स्फुट रूप से (अवगाह्य) आलोडनकर (विश्वस्य) समस्त पदार्थो के (उपरि) ऊपर (चारुचरन्तं) सुन्दरता से चलने वाले (अनन्त) अविनश्वर (इम) इस (आत्मानं) आत्मा को (आत्मनि) अपने में (परमात्मा) उत्कृष्ट आत्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि (साक्षात्) प्रत्यक्ष रूप से (कलयतु) प्राप्त करे ॥४॥

वर्णाद्या वा रागमोहादयोवाभिन्नाभावाः सर्व एवास्य पु सः ॥ तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेक पर स्यात् ॥५॥

अन्वयार्थ—(वर्णाद्या) वर्णादि (वा) अथवा (रागमोहादयः) राग द्वेष मोह आदि (सर्वे) सभी (भावा) भाव (अस्य) इस

(पु स) आत्मा म (भिन्ना) अलग (एव) ही (मति) है (तेन) तिस कारण से (एव) ही (तत्वत) वस्तु स्वरूप के (अंत) अतरग को (पश्यत) देखने वाले (अस्य) इस (पु स) आत्मा क (अमी) ये वर्णादि और रागादि भाव (ना) नहीं (दृष्टा) देखे (स्यु:) जाते हैं (पर) सिर्फ (एकं) एक आत्म द्रव्य ही (दृष्ट) देखा (स्यात्) जाता है ॥ ५ ॥

(उपजाति)

निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेवतत्स्यान्न कथंच नान्यत् । रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोश पश्यन्ति रुक्म न कथंचनासि ॥६॥

अन्वयार्थ—(अत्र) इस लोक म (येन) जिस पदार्थ से (यत्) जो (किंचित्) कुछ भी (निर्वर्त्यते) रचा जाता है (तत्) वह (तदेव) वही (स्यात्) है (कथचन) किसी भी प्रकार से (अन्यत् न) दूसरा नहीं (इह रुक्मेणनिर्वृत्त) इस लोक म स्वर्ण से रची गई (असिकोश) तलवार की म्यान को तत्वज्ञ लोग (रुक्मपश्यन्ति) सोना देखते हैं (असि कथचन न) तलवार को किसी भी प्रकार से नहीं देखते ॥६॥

(उपजाति)

वर्णादि सामग्र्यमिद विदतु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।

ततोऽस्त्विद पुद्गलएव नात्मा
यतः सविज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥७॥

अन्वयार्थ—(इद वर्णादिसामग्र्यम्) यह वर्णादि सामग्री (हि) निश्चयसे (एकस्यपुद्गलस्यनिर्माणम् विद तु) एक पुद्गल की रचना जानो (ततः इद पुद्गल एव अस्तु) जिस कारण से यह वर्णादि सामग्री पुद्गल ही है (आत्मा न) आत्मा नहीं (यत सविज्ञानघन) क्योंकि वह आत्मा विज्ञान स्वरूप है (तत अन्य) इसलिये पुद्गल से भिन्न (अस्ति) है ॥७॥

(अनुष्टुप)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भोघृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८

अन्वयार्थ—(घृतकुम्भाभिधानेऽपि) घी का घड़ा कहने पर भी (चेत् कुम्भो घृतमयो न) यदि घड़ा घी का नहीं है तो (वर्णादिमज्जीव जल्पनेऽपि) वर्णादिमान जीव कहने पर भी (जीव तन्मय न) जीव वर्णादिमान नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप)

अनाद्यनन्तमचल स्वसवेद्यमिद स्फुटम् ।
जीवः स्वय तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥९॥

अन्वयार्थ—(जीव) जीव (तु) तो (स्वयं) स्वयं (चैतन्य)

ततोऽस्त्विद पुद्गलएव नात्मा
यतः सविज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥७॥

अन्वयार्थ—(इद वर्णादिसामग्यम्) यह वर्णादि सामग्री (हि) निश्चयसे (एकस्यपुद्गलस्यनिर्माणम् विदन्तु) एक पुद्गल की रचना जानो (तत इद पुद्गल एव अस्तु) तिस कारण से यह वर्णादि सामग्री पुद्गल ही है (आत्मा न) आत्मा नहीं (यत सविज्ञानघन) क्योंकि वह आत्मा विज्ञान स्वरूप है (तत अन्य) इसलिये पुद्गल से भिन्न (अस्ति) है ॥७॥

(अनुष्टुप)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भोघृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८

अन्वयार्थ—(घृतकुम्भाभिधानेऽपि) घी का घड़ा कहने पर भी (चेत् कुम्भो घृतमयो न) यदि घड़ा घी का नहीं है तो (वर्णादिमजीव जल्पनेऽपि) वर्णादिमान जीव कहने पर भी (जीव तन्मयःन) जीव वर्णादिमान नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप)

अनाद्यनन्तमचल स्वसंवेद्यमिद स्फुटम् ।
जीवः स्वय तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥९॥

अन्वयार्थ—(जीव) जीव (तु) तो (स्वय) खुद (चैतन्य)

चैतन्य है (अनाद्यनन्त) आदि और अन्त से रहित (अचलं) चलता से रहित (स्वसंवेद्य) स्वतः जानने योग्य (इदं उच्चैः) यह अतिशयरूप (स्फुटम्) स्फुरायमान (चकचकायते) अतिशय रूपसे प्रकाशमान है ॥९॥

(शार्दूलविक्रीडित)

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्त्तत्वमुपास्यपश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः
इत्यालोच्यविवेचकैःसमुचित ना व्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तव्यजितजीवतत्त्वमचल चैतन्यमालम्ब्यतां

अन्वयार्थ— (यत अजीव) जिस कारण से अजीव (वर्णाद्यैः सहित) वर्णादि सहित (तथाविरहिता) तथा वर्णादि से रहित (द्वेधास्ति) दो प्रकार का है (तत अमूर्तत्व) तिस कारण से अमूर्तपनेको (उपास्य) प्राप्त कर (जगत्जीवस्यतत्त्वं नपश्यति) ससारी जीव वस्तु के स्वरूप को नहीं देखते हैं (इति आलोच्य) ऐसा विचार कर (विवेचकैः) ज्ञानी पुरुषा ने परीक्षाकर (अव्याप्ति न) अव्याप्ति दोष से दूषित नहीं (वा) अथवा (अतिव्याप्ति न) अतिव्याप्ति दोषसे दूषित नहीं है (इति समुचित) इस प्रकार बहुत ठीक (व्यक्त) कहा (अत अचलं व्यजितजीवतत्व) इसलिये निश्चल स्पष्ट रूप जीवतत्त्व को (चैतन्य) चैतन्यका (आलम्ब्यता) आलम्बन करना चाहिए॥१०

(वसततिलका)

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्न —
ज्ञानीजनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्त ॥
अज्ञानिनोनिरवधिप्रविजृम्भितोऽय—
मोहस्तु तत्कथमहोवतनानटीति ॥११॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी जन) ज्ञानवान मनुष्य (लक्षणत विभिन) लक्षण से अत्यन्त भिन्न (जीवात्) जीव द्रव्य से (स्वय उल्लसन्त) स्वत प्रकाशमान (अजीवइति स्वय अनुभवति) अजीवद्रव्य को इस प्रकार खुद अनुभव करता है (तु) किन्तु (अज्ञानिन·) अज्ञानी पुरुष (निरवधि प्रविजृम्भित) 'सीमा रहित फैलता हुआ (अयम् मोह) यह मोह (कथ) क्या (नानटीति) वार वार नाचता है (तत् अहोवत) यह हमको बड़ा अचम्भा अर्थात् खेद है ॥११॥

(वसततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये—
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध—
चैतन्यधातुमयमूर्तिरय च जीव ॥१२॥

अन्वयार्थ—(अस्मिन् अनादिनि) इस अनादि (महति

अविवेक नाट्ये) महान् अविवेकरूपी नाटक में (वर्णादिमान्) वर्णादि वाला (पुद्गलएव) पुद्गल ही (नटति) नाचता है (अन्य न) दूसरा नहीं (च) और (अयं जीवः) यह जीव (रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्ति: अस्ति रागादि पुद्गल के विकारों से भिन्न निर्मल चैतन्य धातु रूप मूर्ति वाला है ॥ १२ ॥

(मन्दाक्रान्ता)

इत्थं ज्ञान क्रकच कलना पाटनं नाटयित्वा-
जीवाजीवौस्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः ॥
विश्वं व्याप्यप्रसभविकशद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या-
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥१३॥

अन्वयार्थ—(इत्थं) इस प्रकार (जीवाजीवौ) जीव और अजीव दोनों (ज्ञानक्रकचकलनापाटनं) ज्ञानरूपी करौंत के उपयोग से भिन्नता को (नाटयित्वा) दिखाकर (नचा कर) (यावत्) जब तक (स्फुट विघटनं) स्पष्ट पृथक बिल्कुल भेद को (नैव) नहीं (प्रयात) प्राप्त होवे हैं (तावत्) तब तक (प्रसभ-विकशात्) वेग से प्रगट होता हुआ (ज्ञातृद्रव्यं) जीव द्रव्य (व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या) प्रगट चैतन्य शक्ति से (विश्वं व्याप्य) जगत को व्याप्त कर (स्वयं अतिरसात्) खुद अति वेग से (उच्चैः चकाशे) ऊपर शोभित होता है ॥ १३ ॥

॥३॥ कर्तृकर्माधिकारः लिख्यते ॥

(मदाक्रान्ता)

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानाशमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्ति
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीर
साक्षात्कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासिविश्व ॥१

अन्वयार्थ—(इह एक चित् अहं कर्ता अस्मि) इस संसार में एक चैतन्य रूप में कर्ता हूँ (अमी कोपादय मे कर्म) ये क्रोधादि भाव मेरे कर्म हैं (इति अज्ञाना कर्तृकर्मप्रवृत्ति) इस प्रकार अज्ञानियों की कर्ता कर्म की प्रवृत्ति को (अभित) सब तरफ से (शमयत्) नाश करता हुआ (परमोदात्त अत्यन्तधीर) अति उत्कृष्ट अत्यन्त धीर (निरुपधिप्रथकद्रव्यनिर्भासि) उपाधि रहित अलग अलग द्रव्यों को प्रकाशित करने वाला (ज्ञानज्योति विश्व साक्षात् कुर्वत् स्फुरति) ज्ञान रूपी प्रकाश समस्त लोक को प्रत्यक्ष करता हुआ विकास को प्राप्त होता है ॥१॥

(मन्दाक्रान्ता)

परपरिणतिमुज्झत् खण्डयद्भेदवादा—
निदमुदितमखण्डज्ञातमुच्चण्डमुच्चैः ॥

ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गलःकर्मबन्धः ॥२॥

अन्वयार्थ—(परपरिणतिं उज्झत्) परकी परणति को छोड़ता हुआ (भेदवादानखंडयत्) मति आदि भेद वालों को खंडित करता हुआ (उचण्डम् अखंडम् उच्चैः) अति प्रचण्ड अखण्ड और अति उन्नत (इदं ज्ञानं उदितं) यह ज्ञान प्रगट हुआ है (ननु) निश्चय से (इह कर्तृ कर्म प्रवृत्ते) इस संसारमें कर्ता और कर्म की प्रवृत्ति को (अवकाश कथस्यात्) अवकाश कैसे मिल सकता है (वा पौद्गल कर्मबंध कथभवति) और पुद्गल सम्बन्धी कर्म बंध कैसे हो सकता है (अपितु न) अर्थात नहीं हो सकता।

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्येवंविरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिपरां
स्वविज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवान.पर ।
अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात्क्लेशान्निवृत्तःस्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतःसाक्षीपुराणःपुमान् ।३

अन्वयार्थ—(इत्येवं) इस प्रकार (संप्रतिपरद्रव्यान्) इस समय पर द्रव्य से अत्यन्त (निवृत्तिं) निवृत्ति को जुदाई को (विरचय्य) रचकर (विज्ञानघनस्वभावं) विज्ञान घन ही है

स्वभाव जिसका (परम्) सिर्फ (अभयात्) निर्भयतासे (स्वं) अपनी (आस्तिघ्नुवान) आत्माको स्थिर करता हुआ (अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात्) अज्ञानसे पैदा हुए कर्ता कर्म रूप (क्लेशान्निवृत्त) क्लेश से दूर होता हुआ (स्वयं ज्ञानीभूत) खुद ज्ञान रूप हुआ (जगत साक्षीपुराण पुमान् इत चकास्ति) जगतका प्रत्यक्ष करने वाला, अनादि, आत्मा इस तरह से प्रकाशित हो रहा है ॥३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

व्याप्यव्यापकता तदात्मनिभवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्य व्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेणभिन्दस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एव लसितःकर्तृत्वशून्य.पुमान् ॥

अन्वयार्थ—(व्याप्य व्यापकता तदात्मनि एव भवेत्) व्याप्य और व्यापकता रूप सबध व्याप्य व्यापक रूप वस्तु में ही होता है व्याप्य व्यापक शून्य वस्तु म तो नहीं (व्याप्य व्यापक भावसभवं ऋते कर्तृ कर्मस्थिति॰) व्याप्य व्यापकभाव के बिना कर्ता कर्म की स्थिति (का) क्या हो सक्ती है, अर्थात् कुछ भी नहीं, (इति उद्दामविवेकघस्मर अहो भारेण तम भि द) इस तरह के विशाल ज्ञान रूप समस्त पदार्थों को विषय करने वाले तेजके भारसे अज्ञानांधकार को छिन्नभिन्न

करता हुआ (ज्ञानी भूय तदा कर्तृत्वशून्य.) ज्ञानरूप कर्तापन मे रहित (स एष. पुमान् लसित) वह यह आत्मा प्रकाशित हुआ ॥४॥

(स्रग्धरा)

ज्ञानी जानन्नपीमांस्वपरपरिणतिपुद्गलश्चाप्य जानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तःकलयितुमसहौनित्यमत्यन्तभेदात्
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भातितावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्तिक्रकचवदयभेदमुत्पाद्यसद्यः

अन्वयार्थ—(ज्ञानी) विवेकी (इमा) इस (स्वपरपरिणति) अपनी और पर का परिणतिको (जानन्) जानता हुआ (अस्ति) है (अपि च) और (पुद्गल) पुद्गल (स्वपरपरिणतिं) अपनी और परकी परिणति को (अजानन्) नहीं जानता है (अत) इसलिये (इमौ) ये दोना (नित्य) हमेशा (अत्यन्तभेदात्) अत्यन्त पृथक होनेसे(व्याप्तृ व्याप्यत्व) व्याप्य व्यापकता को (अन्त) अन्तरगमें (कलयितु) धारण करने में (असहौ) असमर्थ है (अज्ञानात्) अज्ञानसे (अनया॰) जीव और पुद्गल के (कर्तृकर्म भ्रममति) कर्ता कर्म की भ्रमात्मक बुद्धि (तावत्) तब तक (भाति) मालूम पड़ती है (यावत्) जब तक (विज्ञानार्चि॰) विज्ञान ज्योति (अय) यह आत्मा (क्रकचवत्) करात के समान

(भेद) भेद का (उत्पाद्य) उत्पन्न कर (ज्ञान न चकास्ति) शीघ्र प्रगट नहीं होता है ॥५॥

(आर्या) ५१

य परिणमति स कर्ता य परिणामो भवेत्तु तत्कर्म
या परिणति क्रिया सा त्रयमपिभिन्न न वस्तुतया६

अन्वयार्थ—(य परिणमति) जो परिणमन करता है (स कर्ता भवेत्) वह कर्ता होता है (तु) और (य) जो (परिणाम) परिणाम है (तत्कर्म भवेत्) वह कर्म है (या) जो (परिणति) परिणति होती है (सा क्रिया) वह क्रिया है (वस्तुतया) यथार्थ रूप से (त्रय अपि भिन्न) तीनों भी भिन्न (न) नहीं है ॥६॥

(आर्या) ५२

एक परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणति स्यादनेकमप्येकमेव यत ॥७॥

अन्वयार्थ—(सदा एक परिणमति) हमेशा एक रूप परिणमन करता है (सदा) हमेशा (एकस्य) एक का (परिणाम) परिणमन (जायते) होता है (एकस्य) एक की (परिणति) परिणमन रूप क्रिया (स्यात) होती है (यत) क्योंकि (अनेक अपि) अनेक रूप परिणमन भी (एक एव) एक द्रव्य रूप ही होते हैं ॥७॥

(आर्या) ५३

नोभौ परिणमत खलु परिणामो नोभयो प्रजायेत्
उभयोर्न परिणति स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥८॥

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से (उभौ) दो द्रव्य (न परिणमत) एक रूप परिणमन नहीं करते (उभयो) दो द्रव्यों का (परिणाम) एक रूप परिणमन (न प्रजायेत्) नहीं होता है (उभयो) दो द्रव्यों की (परिणति) परिणति रूप क्रिया (न स्यात्) नहीं होती (यत्) क्योंकि (अनेक) अनेक द्रव्य (सदा अनेकमेव) हमेशा अनेक ही होते हैं एक नहीं ॥८॥

(आर्या) ५४

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौस्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥६॥

अन्वयार्थ—(हि एकस्य) निश्चय से एक द्रव्य के (द्वौ कर्तारौ) दो कर्ता (न स्त) नहीं होते (च) और (एकस्य) एक द्रव्य के (द्वे कर्मणि न) दो कर्म नहीं होते (च) और (एकस्य) एक द्रव्य के (द्वे क्रिये न स्त) दो क्रियायें नहीं होतीं (यत) क्योंकि (एक अनेक न स्यात) एक द्रव्य अनेक द्रव्य रूप नहीं होता ॥६॥

(शार्दूलविक्रीडित) ५५

आससारत एव धावतिपरं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः ।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजे-
त्तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ।

अन्वयार्थ—(आससारत) अनादि काल से (एव) ही (अहं परं) मैं पर द्रव्य को (कुर्वे) करता हूँ (इति उच्चकै) ऐसा महान दुर्वार)

दुख से दूर करने योग्य (महाहंकाररूप) महा अभिमान रूप (तम) अज्ञानान्धकार (इह) इस संसार में (ननु) निश्चय से (मोहिना) मोही अज्ञानी के (उच्चै धावति) हा दौड़ा आ रहा है (यदि) यदि (तत्) वह अज्ञानान्धकार (भूतार्थपरिग्रहेण) शुद्धद्रव्यार्थिक नय के ग्रहण से (एकवार विलय) एक बार विनाश को (व्रजेत) प्राप्त हो जाय (तर्हि कि) तो क्या (ज्ञानघनस्य आत्मन) ज्ञान घन आत्मा के (तत् बधन) वह अज्ञानान्धकार का सबध (भूय) फिर से (भवेत्) हो सकता है (अहो) आश्चर्य है (अपितु न भवेत्) अर्थात् नहीं हो सकता ॥१०॥

(अनुष्टुप) ५६

आत्मभावान्करोत्यात्मा, परभावान्सदा पर ।
आत्मैवह्यात्मनो भावा परस्य पर एव ते ॥११॥

अन्वयार्थ—(आत्मा सदा आत्मभावान् करोति) आत्मा हमेशा आत्मभावों का कर्ता है (पर सदा परभावान् करोति) पर द्रव्य सदा पर भावों का करता है (आत्मन भावा आत्मा एव) आत्मा के भाव आत्मारूप ही है (परस्य ते भावा पर एव) पर के वे भाव पररूप ही है ॥११॥

(वसन्ततिलका) ५७

अज्ञानतस्तु स तृणाभ्यवहारकारी
ज्ञान स्वय किल भवन्नपि रज्यते य ।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्ल रसाति गृध्या-
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसाल ॥१२॥

अन्वयार्थ—(य) आत्मा (किल) निश्चय से (स्वयं ज्ञान भवनाप) खुद ज्ञानस्वरूप होता हुआ भी (अज्ञानतस्तु) अज्ञान से तो तृणाभ्यवहारकारी) तृणों को भक्षण करने वाले पशु के समान (स रज्यते) राग अनुराग करता है (अथो रसाल) वह रागमिश्रित रस को (पी कर) पान के (दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृध्या) दही और शक्कर की मारे और खट्टे रस की गृद्धता से (नून निश्चय करके (अज्ञानतः) अज्ञानता से (दुग्ध गा दुग्धि) दूध को गाय से दोहन करता है ॥१२॥

(शार्दूलविक्रीडित) ५८

अज्ञानान्मृगतृष्णिका जलधियाधावन्ति पातुमृगाः
अज्ञानात्तमसिद्रवन्ति भुजगा ध्यासेनरज्जौजना ।
अज्ञानाच्चविकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिवत्
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्री भवन्त्याकुला

अन्वयार्थ—(मृगा अज्ञानात् जलधिया मृग अज्ञान के द्वारा जल की बुद्धि से (मृगतृष्णिका) मृगमरीचिका को (पातु धावन्ति) पीने के लिये दौड़ते हैं (जना अज्ञानात्) मनुष्य अज्ञान से (रज्जौ) रस्सी में (भुजगाध्यासेन) सर्प की बुद्धि से (तमसि) अन्धकार में (द्रवन्ति) भागते हैं (स्वयं अमी) खुद ये (जीवा शुद्धज्ञानमया अपि) जीव शुद्ध ज्ञानस्वरूप होते हुए भी (अज्ञानात् विकल्पचक्र करणात्) अज्ञान से विकल्पजाल की रचना के द्वारा (वातोत्तरङ्गाब्धिवत् आकुल) वायु से उठ रही हैं तरंगें जिसमें ऐसे समुद्र के समान व्याकुल होते हुए (कर्तृ भवन्ति) कर्ता हो रहे हैं ॥१३॥

(वसन्ततिलका) ५९

ज्ञानाद्विवेचकतयातुपरात्मनोर्यो-
जानाति हंस इव वाः पयसो विशेष ।
चैतन्यधातुमचल स सदाधिरूढो-
जानाति एव हि करोति न किंचनापि ।१४

अन्वयार्थ—(य) जो आत्मा (ज्ञानात्) ज्ञान से (तु) और (विवेचकतया) भेद विज्ञान से (परात्मनो) पर और आत्मा की (विशेष) विशेषता को (वाः पयसो विशेष) पानी और दूध की विशेषता को (हंस इव) हंस के समान (जानाति) जानता है (स) वह (सदा) हमेशा (अचल चैतन्यधातु) अविचल चैतन्यात्मक धातु को (अधिरूढ) आरूढ़ हुआ (जानाति एव) जानता ही है (किंचन अपि न) कुछ भी नहीं (करोति) करता है ॥१४॥

(मन्दाक्रान्ता) ६०

ज्ञानादेव ज्वलनपयसो रौष्ण्यशैत्य व्यवस्था-
ज्ञानादेवोल्लसतिलवणस्वादभेदव्युदासः ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातो -
क्रोधादेश्चप्रभवतिभिदा भिन्दती कर्तृ भावम् ।१५

अन्वयार्थ (ज्वलनपयसो) अग्नि और जल का (औष्ण्यशैत्य व्यवस्था) उष्णता और शीतलता का भेद (ज्ञानादेव उल्लसति) ज्ञान से ही प्रगट होता है (लवणस्वादभेदव्युदास) नमक और व्यंजन के स्वाद का भेद (ज्ञानादेव) ज्ञान से ही प्रगट होता है (स्वरसविकस

नित्यचैतन्यधातो) आगे रस या विज्ञान लिए चैतन्यात्म धातु का (च क्रोधाद कर्तृ भा । भिन्दति) और क्रोधादिक के कर्तापन को भेद करता हुआ (भिन्न) भेद (ज्ञानान्वि प्रभवति) ज्ञान म ही प्रादुर्भूत होता है ॥१५॥

(अनुष्टुप) ६१

अज्ञान ज्ञानमप्येव कुर्वन्नात्मानमञ्जसा ।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् १६

अन्वयार्थ—(एव) इस तरह (अज्ञान) अज्ञान रूप (अपि) और (ज्ञान) ज्ञानरूप (आत्मान कुर्वन्) आत्मा को करता हुआ (आत्मा) आत्मा (अञ्जसा) निश्चय से (आत्मभावस्य कर्ता स्यात्) आत्म भाव का करने वाला होता है (परभावस्य कदाचित् न स्यात्) परभाव का कर्ता कभी भी नहीं होता ॥१६॥

(अनुष्टुप) ६२

आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञान ज्ञानादन्यत्करोतिकिम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽय व्यवहारिणाम् ।१७।

अन्वयार्थ—(आत्मा स्वय ज्ञान अस्ति) आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है (ज्ञान) आत्मा (ज्ञानात् अन्यत् किं करोति) ज्ञान से अन्य किस का कर्ता है (अपितु) किन्तु (किं अपि न) किसी का भी नहीं (आत्मा परभावस्य कर्ता अस्ति) आत्मा पर भाव का कर्ता है (अयं व्यवहारिणा) यह व्यवहारी जीवों का (मोह अस्ति) मोह है ॥१७॥

(वसततिलका) ६३

जीव करोति यदि पुद्गलकर्मनैव—
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव ।

एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय—
सङ्कीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥१८॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि (जीव पुद्गलकर्म नैव करोति) जीव पुद्गल कर्म को नहीं करता है (तर्हि) तो (क) कौन (तत्) उन पौद्गलिक कर्मों को (कुरुते) करता है (इति) इस प्रकार की (अभिशंकया एव) आशंका से ही (तीव्ररयमोहनिवर्हणाय) तीव्र है वेग जिसका ऐसे मोह रूप अज्ञान के दूर करने के लिये (पुद्गलकर्मकर्तृ) पुद्गल कर्म के कर्ता को (सङ्कीर्त्यते) कहते हैं (यूयं) तुम सब (एतर्हि) इस समय (शृणुत) सुनो ॥१८॥

(उपजाति) ६४

स्थितेत्यविघ्ना खलुपुद्गलस्य—
स्वभावभूतापरिणामशक्तिः ।
तस्यां स्थितायां स करोति भाव—
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥१९॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (पुद्गलस्य) पुद्गल द्रव्य की (स्वभावभूतापरिणामशक्ति) स्वभावरूप परिणमन रूप सामर्थ्य (खलु) निश्चय से (अविघ्ना स्थिता) निर्विघ्नस्थित हुई (तस्यां स्थितायां) उस पुद्गल द्रव्य की शक्ति के स्थित होने पर (स आत्मनः यम् भावं करोति) वह पुद्गल द्रव्य अपने जिस भाव को करता है (तस्य) उस भाव का (कर्ता) करने वाला (स एव) वह पुद्गल द्रव्य ही है ॥१९॥

(आर्या) ६५

स्थितेति जीवस्यनिरन्तराया—
स्वभावभूतापरिणामशक्ति ।
तस्या स्थिताया सकरोतिभाव—
य स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥२०॥

अन्वयार्थ—(इति आत्मस्य स्वभावभूता) इस प्रकार जीव की स्वभाव रूप (परिणामशक्ति) परिणमन शक्ति (निरन्तराया) निर्विघ्न (स्थिता) स्थित हुई (तस्यां स्थितायां) उस परिणमन शक्ति के स्थित होने पर (स) वह जीव (स्वस्य य भाव करोति) अपने जिस भाव को करता है (तस्य कर्ता स एव) उस भाव का करने वाला वह जीव ही (भवेत्) होता है ॥२०॥

(आर्या) ६६

ज्ञानमयएव भाव कुतोभवेत् ज्ञानिनो न पुनरन्य.
अज्ञानमय सर्व कुतोऽयमज्ञानिनो नान्य ।२१।

अन्वयार्थ—(ज्ञानिन) ज्ञानी के (ज्ञानमय) ज्ञान रूप (एव) ही (भाव भवन्) भाव होते हैं (पुन) फिर (अन्य) पर भाव (कुत) किसी भी तरह से (न भवेत्) नहीं हो सकता (अज्ञानिन) अज्ञानी के (अज्ञानमय) अज्ञानरूप (सर्व) सब (अयभाव) ये भाव (भवेत्) होते हैं (अन्य) दूसरा (कुत) किसी भी तरह से (न भवेत्) नहीं हो सकता ॥२१॥

(अनुष्टुप्) ६७

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥२२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः सर्वेभावाः) ज्ञानी के सभी भाव (हि) निश्चय से (ज्ञाननिर्वृत्ता) ज्ञान से रचे हुए (भवन्ति) होते हैं (तु) और (अज्ञानिनः) अज्ञानी के (ते) वे (सर्वे अपि) सभी (भावाः अज्ञान निर्वृत्ताः) भाव अज्ञान से रचे हुए (भवन्ति) होते हैं ॥२२॥

(अनुष्टुप्) ६८

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानी) अज्ञानी (अज्ञानमयभावानां) अज्ञानरूप भावों की (भूमिकाः) भूमि अर्थात् स्थानों को (व्याप्य) व्याप्त करके (द्रव्यकर्मनिमित्तानां) द्रव्यकर्म के कारणभूत (भावानां हेतुतां) भावों के हेतुपन को (एति) प्राप्त करता है ॥२३॥

(उपेन्द्रवज्रा) ६९

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं—
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता—
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४॥

अन्वयार्थ—(ये) जो जीव (नयपक्षपातं) नयों की आसक्ति विशेष को (मुक्त्वा) छोड़कर (नित्यं एव स्वरूपगुप्ता) हमेशा ही निज

रूप में लीन (नियमंति) होते हैं (विकल्पजालच्युतशान्त चित्ता) विकल्प जालों के निकल जाने से शान्त चित्त (ते एव) वे ही जीव (साक्षात् अमृतं पिबन्ति) साक्षात् अमृत को पाते हैं ॥ ४॥

(उपजाति) ७०

एकस्य बद्धो न तथापरस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२५॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय की अपेक्षा से (जीव बद्ध) जीव बंधा हुआ है (परस्य) और दूसरे नय की अपेक्षा से (तथा) बंधा हुआ (न) नहीं है (इति) इस प्रकार (चिति) आत्मा के विषय में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ पक्षपातौ स्त) दो पक्षपात हैं (य च्युत पक्षपात तत्ववेदी अस्ति) जो पक्षपात रहित तत्व को जानने वाला है (तस्य खलु नित्य) उसके निश्चय से हमेशा (चित्) चैतन्य (चित्) चैतन्य (एव अस्ति) ही है ॥ ५॥

(उपजाति) ७१

एकस्य मूढो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२६॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय की अपेक्षा से (मूढ) मोही (अस्ति) है (परस्य) दूसरे नय की अपेक्षा से (तथा न अस्ति) मोही नहीं है (चिति) चैतन्य आत्मा में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात (स्त) हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी) तत्त्व को जानने वाला (च्युतपक्षपात अस्ति) पक्षपात रहित है (तस्य) उसके (खलु) निश्चय करके (चित्) चैतन्य-आत्मा (चिदेव) चैतन्य ही (नित्य) हमेशा (अस्ति) है ॥२६॥

(उपजाति) ७२

एकस्यरक्तो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥२७॥

अर्थ—(एकस्य रक्त अस्ति) एक नय की अपेक्षा से जीव राग करने वाला है (परस्य रक्त न अस्ति) दूसरे नय की अपेक्षा से रागी नहीं है (चिति) चैतन्य आत्मा में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युत पक्षपात अस्ति) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात रहित है (तस्य खलु चित् चिदवनित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२७॥

(उपजाति) ७३

एकस्यदुष्टो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव॥२८॥

अन्वयार्थ—(एकस्य नयस्य अपेक्षया दुष्ट अस्ति) एक नय की अपेक्षा से दुष्ट है (परस्य नयस्य अपेक्षया दुष्ट नास्ति) दूसरे नय की अपेक्षा से दुष्ट नहीं है (चिति) ऐसे चैतन्य में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्व का जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२८॥

(उपजाति) ७४

एकस्यकर्ता न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२९॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय में (आत्मा कर्ता) आत्मा कर्ता है (परस्य) दूसरे नय से (तथा न) कर्ता नहीं है (इति चिति) इस चैतन्य में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२९॥

(उपजाति) ७५

एकस्यभोक्ता न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात-
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३०॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय में (भोक्ता) भोक्ता है और (परस्य) दूसरे नय से (तथा न) भोक्ता नहीं है (इति चिति) इस प्रकार चैतन्य में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ पक्षपातौ) दो पक्षपात हैं ॥३०॥ (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२६॥

(उपजाति) ७६

एकस्य जीवो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३१॥

अन्वयार्थ—(एकस्य जीव) एक नय से जीव है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव नहीं है (इति चिति) इस प्रकार चैतन्य में (द्वयो द्वौ पक्षपातौ) दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है

(तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३१॥

(उपजाति) ७७

एकस्यसूक्ष्मो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३२॥

अन्वयार्थ—(एकस्य सूक्ष्म) एक नय से जीव सूक्ष्म है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव सूक्ष्म नहीं है (चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३२॥

(उपजाति) ७८

एकस्यहेतु न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३३॥

अन्वयार्थ—(एकस्य हेतु) एक नय से हेतु है (परस्य तथा न) दूसरे नय से हेतु नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे चै

चैतन्य में जो नया के दो पक्षपात है (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३३॥

(उपजाति) ७६

एकस्यकार्यं न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३४॥

अन्वयार्थ—(एकस्य कार्य) एक नय से कार्य है (परस्य तथा न) और दूसरे नय से कार्य नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३४॥

(उपजाति) ८०

एकस्यभावो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३५॥

अन्वयार्थ—(एकस्य भाव) एक नय से भाव है (परस्य तथा न) दूसरे नय से भाव नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व का जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३५॥

(उपजाति) ८१

एकस्यवैको न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३६॥

अन्वयार्थ—(एकस्य जीव एक) एक नय से जीव एक है (परस्य तथा न) दूसरे नय से अनेक है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३६॥

(उपजाति) ८२

एकस्य मातो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३७॥

अन्वयार्थ—(एकस्य शात) एक नय से शात (अतसहित) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से अन्तसहित नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३७॥

(उपजाति) ८३

एकस्य नित्यो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३८॥

अन्वयार्थ—(एकस्य नित्य) एक नय से जीव नित्य है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव नित्य नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३८॥

(उपजाति) ८४

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३६॥

अन्वयार्थ—(एकस्य वाच्य) एक नय से जीव वाच्य (वचन से कहने में आते है (परस्य तथा न) दूसरे नय से वचनागोचर कहने में नहीं आते है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य मे दोनों नयों के दो पक्षपात है (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युत पक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३६॥

(उपजाति) ८५

एकस्य नाना न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥४०॥

अन्वयार्थ—(एकस्य नाना) एक नय से नाना रूप है (परस्य तथा न) दूसरे नय से नाना रूप नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिदेव नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४०॥

(उपजाति) ८६

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य--
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥४१॥

अन्वयार्थ—(एकस्य चेत्य) एक नय से चेत्य अर्थात जानने योग्य है और (परस्य तथा न) दूसरे नय से जानने योग्य नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय कर चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४१॥

(उपजाति) ८७

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥४२॥

अन्वयार्थ—(एकस्य दृश्य) एक नय से दृश्य (देखने योग्य) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से देखने में नहीं आता (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला

पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिन्च नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४२॥

(उपजाति) ८८

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥४३॥

अन्वयार्थ—(एकस्य वेद्य) एक नय से वेद्य (जानने योग्य) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जानने में नहीं आता (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिदेव नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४३॥

(उपजाति) ८८

एकस्य भातो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव॥४४॥

अन्वयार्थ—(एकस्य भात) एक नय से वर्तमान प्रत्यक्ष है और (परस्य तथा न) दूसरे नय से वर्तमान प्रत्यक्ष नहीं है (इति चिति

द्वयो र्द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य मे दोनों नयों के दो पक्षपात हैं और (य तत्त्ववेदी) जो तत्त्व वेदी हैं वह स्वरूप का यथार्थ अनुभव करने वाले हैं (तस्य चिति चिन्नेव नित्य खलु) उनका चिन्मात्र भाव है वह चिन्मात्र ही है (च्युतपक्षपात) पक्षपात से रहित है ॥४४॥

(वसततिलका) ६०

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला—
मेव व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षां।
अंतर्बहिः समरसैकरसस्वभाव—
स्व भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्र ॥४५॥

अन्वयार्थ—(य तत्त्ववेत्ता) जो आत्मा तत्त्व को जानने वाला है (स एव) वह पूर्वोक्त प्रकार से (स्वेच्छा समुच्छलदनल्पविकल्पजाला) अपनी इच्छा से उठ रहे हैं अनेक विकल्पों के जाल जिसमें ऐसी (महतीं) बड़ी भारी (नयपक्षकक्षाम्) नयपक्ष रूपी वन को (व्यतीत्य) उल्लंघन कर (अंतर्बहिः समरसैकरसस्वभाव) अंतरंग और बहिरंग में समता रस ही है एक रस रूप स्वभाव जिसका ऐसे (स्व अनुभूतिमात्र) अपनी अनुभूति रूप (एक भाव उपयाति) एक अद्वितीय भाव को प्राप्त करता है ॥४५॥

(रथोद्धता) ६१

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छल—
त्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभि ।

यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षण—
कृत्स्नमस्यति तदस्मिचिन्महः ॥४६॥

अन्वयार्थ—(य तत्त्ववेदी) जो तत्त्व को जानने वाला है (स एव अनुभवति) वह ही ऐसा अनुभव करता है (यत्) जो (अहं) मैं (चिन्महः अस्मि) चैतन्य तेज रूप हूँ (तत्) वह चैतन्यात्मक तेज (पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभि) परिपुष्ट चञ्चल विकल्परूप तरंगों से एव उच्छलति) इस तरह उठते हुए (इदं कृत्स्नम् इन्द्रजाल) इस सम्पूर्ण इन्द्र जाल का (यस्य विस्फुरण) जिसकी चञ्चलता (तत् क्षण एव अस्यति) उसी समय ही दूर कर देता है ॥४६॥

(स्वागता) ६२

चित्स्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थतयैक।
वन्धपद्धतिमपास्यसमस्ताचेतयेसमयसारमपार ४७

अन्वयार्थ—(अहं चित्स्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थतया) चैतन्य स्वभाव के समूह से भावित भाव अभावस्वरूप भावरूप परमार्थपने से (समस्तां बंधपद्धतिं) सम्पूर्ण बंध की पद्धति को (अपास्य) दूर कर (एकं अपारं समयसारं चेतये) एक अपार समयसार का अनुभव करता हूँ ॥४७॥

(शार्दूलविक्रीडित) ६३

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानांविना
सारोय समयस्यभाति निभृतैरास्वाद्यमान स्वयं।

विज्ञानैक रस सएप भगवान् पुण्य पुराण पुमान्
ज्ञानदर्शनमप्ययक्रिमथवा यत्किचनैको ऽप्ययम्।४८

अन्वयार्थ—(य नयाना) जो नयों के (पक्षै विना) पक्षों के बिना (अचल) अविचल (अविकल्पभाव) निर्विकल्प भाव को (आक्रामत्त निभृतै) प्राप्त करता हुआ निश्चिन्त पुरुषों से (स्वयं) स्वतं (अस्वाद्यमान) अनुभूयमान (समयस्य सार) आत्मा का सार (भाति) शोभित होता है (स) वह (विज्ञानैकरस) विज्ञान ही है एक रस जिसका (एष) यह (भगवान पुण्य पुराण) भगवान पवित्र पुराण (पुमान्) पुरुष (अय ज्ञानं) यह ज्ञान (अपि) और (दर्शन) दर्शन (अथवा किं) और तो क्या (यत् किंचन) जो कुछ (अपि) भी है (स अय एक) वह यह एक आत्मा ही है ॥४८॥

(शार्दूलविक्रीडित) ६४

दूर भूरि विकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतोनिजौघ वलात्
विज्ञानेकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन्
नात्मन्येव सदागतानुगतता मायात्ययतोयवत्।४६

अन्वयार्थ—(अय आत्मा) यह आत्मा (निजौघात्च्युत) अपने ज्ञान घन स्वभाव से च्युत हुआ (भूरिविकल्पजालगहन) महान विकल्प जाल रूपी वन में (दूर) अनादि काल से (भ्राम्यन्) घूमता हुआ (विवेकनिम्नगमनात्) विवेक रूप नीचे मार्ग मैं गमन करने से (वलात्) बल पूर्वक (दूरात्एव) दूर से ही (निजौघ) अपने ज्ञान घन स्वभाव को (नीत) प्राप्त हुआ (विज्ञानैकरस) विज्ञान ही है एक रस

जिसका ऐसा (तदेकरसिना) विज्ञान रूप एक रस ले पुरुषों वे (आत्मानं तोयवत्) आत्मा को जल के समान (आत्मनि एव हरन्) आत्मा में ही मिलाता हुआ (सदागतानुगतता) निरंतर देनादेनीपन को (याति) प्राप्त करता है ॥४६॥

(अनुष्टुप) ६५

विकल्पक पर कर्ता विकल्प कर्म केवलं।
न जातु कर्तृकर्मत्वं स विकल्पस्य नश्यति ॥५०॥

अन्वयार्थ—(विकल्पक पर कर्ता अस्ति) विकल्प करने वाला ही कर्ता है, (विकल्प केवल कर्म अस्ति) विकल्प ही कर्म है (सविकल्पस्य कर्तृ कर्मत्वं) विकल्पवान के कर्ता कर्मपना (जातु न नश्यति) कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता ॥५०॥

(रथोद्धता) ६६

य करोति स करोति केवलं—
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलं।
य करोति न हि वेत्ति स क्वचित्—
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(य) जो (करोति) करता है (स केवल करोति) वह केवल करता ही है (तु) और (य)जो (वेत्ति) जानता है (स) वह (तु) तो (केवल) केवल (वेत्ति एव) जानता ही है (य) जो (करोति) करता है (स) वह (हि) निश्चय से (क्वचित् न वेत्ति) कुछ भी नहीं जानता (तु) और (य वेत्ति) जो जानता है (स) वह (क्वचित न करोति) कुछ भी नहीं करता है ॥५१॥

(इन्द्रवज्रा) ६७

ज्ञप्ति. करोतौ न हि भासतेऽन्त—
ज्ञप्तौ करातिश्च न भासतेऽन्त ।
ज्ञप्ति करोतिश्च ततोविभिन्ने—
ज्ञाता न कर्तेति तत स्थितश्च ॥५२॥

अन्वयार्थ—(करोतौ) करोति क्रिया में(ज्ञप्ति) जानने रूप क्रिया (हि) निश्चय से (अंत) अन्तरंग में (न) नहीं (भासते) प्रतिभासित होती है (ज्ञप्तौ करोति) जानने रूप क्रिया में करने रूप क्रिया (अंत न भासते) अन्तरंग में नहीं प्रतिभासित होती है (तत ज्ञप्ति) इसलिये जानना (च) और (करोति) करना (विभिन्ने) अत्यंत भिन्न भिन्न हैं (तत) इसलिये (ज्ञाता) जानने वाला (कर्ता) करने वाला (न स्यात्) नहीं हो सकता (इतिस्थित) ऐसा स्थित हुआ ॥५२॥

(शार्दूलविक्राडित) ६८

कर्ता कर्मणि नास्ति, नास्तिनियत कर्मापितत्कर्तरि
द्वन्द्व विप्रतिषिध्यतेयदि तदाका कर्तृ कर्मस्थिति.
ज्ञाता ज्ञातरि कर्मकर्मणि सदा व्यक्त तिवस्तुस्थिति:
नेपथ्येवत नानटीतिरभसामोहस्तथाप्येपकिं॥५३।

अन्वयार्थ—(कर्ता) कर्ता (कर्मणि) कर्म में (नियत नास्ति) निश्चय से नहीं है (तत्) इसलिये (कर्तरि) कर्ता में (कर्मअपि नास्ति)

र्म भी नहा है (यदि द्वंद्व) यदि दोनों (विप्रतिषिध्यते) विशेष रूप से निषेध किये जाते हैं (तत्) कर्तृ कर्म स्थिति) तो कर्ता और कर्म का स्थिति (का) कैसा (ज्ञाता) जानने वाला (ज्ञातरि) ज्ञान मे (सदा अस्ति) हमेशा रहता है (कर्म) कर्म (कर्मणि) कर्म में (सदा अस्ति) हमेशा रहता है (इति) इस प्रकार (वस्तुस्थिति) वस्तु की मर्यादा (व्यक्ता) स्पष्ट हुई (तथापि) तो भी (एष मोह) यह मोह (रभसा नपथ्ये) शीघ्र रंगभूमि मे (किं नानटीति) क्यों बार बार नाचता है (इति चेत्) यह खेद है ॥५३॥

(मंदाक्रान्ता) ६६

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चै
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥५४

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे आत्मा अज्ञान अवस्था मे (कर्ता) विभाव भावों का कर्ता (आसीत्) था (तथा) वैसे (इदानीं) इस समय अज्ञान भावों का (कर्ता न अस्ति) करने वाला नहीं है (यथा) जैसे ज्ञान के अज्ञान से जो पुद्गल कर्म द्रव्य कर्म रूप (आसीत्) था (स) वह पुद्गल (इदानीं) इस समय (कर्म) द्रव्य कर्म रूप (न भवति) नहीं होता (यथा) जैसे (ज्ञान) ज्ञान (ज्ञान एव) ज्ञान ही (भवति) होता है (तथा) कर्म (पुद्गल अपि) पुद्गल भी (पुद्गल भवति) पुद्गल होता है (तथा) वैसे ही (अन्त) अन्तरग मे (उच्चैश्चिच्छक्तीनां) महान चैतन्य शक्तियों के (निकरभरत) समुदाय के भार से (अत्यन्

गंभीर) अन्दर गमार (ततम अचल) यह निश्चल (ज्ञानज्योति व्यक्त उज्वलित) ज्ञान रूपी प्रकाश स्वरूप में प्रकाशित हुआ ॥५८॥

॥अथ पुण्यपापाधिकार. प्रारभ्यते॥४॥

(द्रुतविलंबित) १००

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो—
द्वितयतागतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लव ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके बाद अर्थात् कर्ता कर्म अधिकार के पश्चात् (अयं ग्लपितनिर्भरमोहरजा) यह नाश कर दिया है मोह रूपी महान रज को जिसने ऐसा (अवबोधसुधाप्लव) सम्यग्ज्ञान रूपी चन्द्रमा (स्वयं शुभाशुभभेदत) शुभ शुभ और अशुभ अर्थात् पुण्य पाप के भेद से (द्वितयता) दो भेदपने को (गत) प्राप्त हुए (तत्कर्म) उस कर्म को (ऐक्य उपानयन् उदेति) एकता को प्राप्त करता हुआ उदय होता है ॥१॥

(मंदाक्रान्ता) १०१

एको दूरात्यजति मदिरा ब्राह्मणत्वाभिमाना—
दन्य शूद्र स्वयमहमिति स्नाति नित्य तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकाया.—
शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२॥

अन्वयार्थ—(शूद्रिकाया उदरात्) शूद्री के उदर से (युगपत् निर्गतौ) एक साथ में क्रम (द्वौ) दो (गतौ) व (शूद्रौ अपि) शूद्र (एक ब्राह्मणत्वाभिमानात्) एक ब्राह्मणपने के अभिमान (मदिरां) मदिरा को (दूरात्) दूर से (त्यजति) छोड़ता है (अन्य अपि शूद्र अस्मि) दूसरा मैं शूद्र हूँ (इति स्वयं नित्य तया एव स्नाति) इसलिये खुद हमेशा उस मदिरा से ही स्नान करता है (साक्षात् जाति भेदभ्रमेण चरत) प्रत्यक्ष जाति के भेद के भ्रम से आचरण करता है ॥ ॥

(उपजाति) १०२

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां—

सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेद ।

तद्बंधमार्गाश्रितमेकमिष्टं—

स्वयं समस्तं खलु बंधहेतु ॥३॥

अन्वयार्थ—(हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां) हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय के (सदा अभेदात्) हमेशा अभेद होने से (हि कर्मभेद नास्ति) निश्चय कर कर्म भेद नहीं है (तत्) इसलिये (बंधमार्गाश्रितं) बंध मार्ग के आश्रित (कर्म स्वयं समस्तं बंधहेतु) कर्म खुद सम्पूर्ण बंध का कारण (खलु इष्टं) निश्चय से इष्ट है ॥२॥

(स्वागता) १०३

कर्मसर्वमपि सर्वविदोय—

द्वंधसाधन मुशन्त्यविशेषात् ।

तेनसर्वमपि तत्प्रतिषिद्ध—
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतु ॥४॥

अन्वयार्थ—(सर्वमिदं) समस्त (सर्वं कर्म) सम्पूर्ण शुभ अशुभ कर्म को (यत् अविशेषात्) जिसका कारण सामान्य रूप से (बंधसाधनमुशन्ति) बंध का साधन कहते हैं (तेन) तिस कारण से (तत्) वह (सर्वं अपि) सम्पूर्ण कर्म भी (प्रतिषिद्ध) निषिद्ध रूप हुआ (ज्ञानं एव शिवहेतु विहितं) ज्ञान ही शिवहेतु कहिये मोक्ष का कारण स्थित हुआ ॥४॥

(शिखरिणी) १०४

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः ।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयंविन्दन्त्येते परमममृतं तत्रनिरताः ॥५॥

अन्वयार्थ—(सर्वस्मिन्) समस्त (सुकृतदुरिते) पुण्य और पाप रूप (कर्मणि) कर्म के (निषिद्धे) निषेध किये जाने पर (किल) निश्चय से (नैष्कर्म्ये) कर्मरहित अर्थात् निवृत्ति के (प्रवृत्ते) प्रवर्तित होने पर (खलु) निश्चय से (मुनयः) मुनिजन (अशरणाः) शरणरहित (न संति) नहीं हो सकते (तदा) उस समय (एषां) इन मुनिजनों के (ज्ञाने) ज्ञान में (प्रतिचरित) आचरण किया गया (ज्ञानं) ज्ञान ही (शरणं भवति) शरण होता है (तत्र) उस ज्ञान में (निरताः) संलग्न (एते) ये मुनिजन (स्वयं) स्वयं (परमम्) श्रेष्ठ (अमृतं) अमृत को (विन्दन्ति) प्राप्त करते हैं ॥५॥

(शिखरिणी) १०५

यदेतत् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवन—
शिवस्याय हेतु स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्व भवनमनुभूतिर्हि विहित ॥६॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (एतत्) यह (ज्ञानात्मा) ज्ञानरूप आत्मा (ध्रुवं अस्ति) ध्रुव है (तत् अचलं) वह निश्चल (आभाति) शोभित होता है (अयं) यह ज्ञान स्वरूप आत्मा (शिवस्य भवनं) मोक्ष का होना रूप (हेतु) कारण (अस्ति) है (यत) क्योंकि (स्वयं) खुद आत्मा ही (शिव अस्ति) मोक्ष रूप है (इति) इसलिए (अत अन्यत्) इस आत्मा से अत्यन्त भिन्न (बंधस्य) बंध का कारण है (यत) क्योंकि (स्वयं) खुद वह भिन्न पदार्थ बंध अस्ति) बंध रूप है (इति) इसलिए (ज्ञानात्मत्वं) ज्ञानरूप (भवन) होना (हि) निश्चय से (अनुभूति) अनुभूति है (तत) तिस कारण से (तत्) उस बंध का और मोक्ष का विधान (विहितं) किया गया है ॥६॥

(अनुष्टुप) १०६

वृत्त ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवन सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥७॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानस्वभावेन) ज्ञानरूप स्वभाव से (वृत्तं) प्रवर्तन (सदा) सदा (ज्ञानस्य भवन) ज्ञान का होना (अस्ति) है (तत्) वह ज्ञान स्वभाव (एकद्रव्यस्वभावत्वात) एक आत्मद्रव्य का स्वभाव होने से (तदेव मोक्षहेतु अस्ति) वह ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है ॥७॥

(अनुष्टुप) १०७

वृत्त कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवन न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥८॥

अन्वयार्थ—(कर्मस्वभावेन) कर्म रूप स्वभाव से (वृत्त अस्ति) वर्तता है (तत्) वह (ज्ञानस्य भवन) ज्ञान का होना (हि) निश्चय से (न) नहीं है (तत् कर्म) वह कर्म स्वभाव (द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्) आत्मा से भिन्न द्रव्य का स्वभाव होने से (मोक्षहेतु) मोक्ष का कारण (न) नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप) १०८

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥९॥

अन्वयार्थ—(मोक्षहेतुतिरोधानात्) मोक्ष के कारण को रोकने से (च) और (स्वयमेव) स्वयं (बंधत्वात्) बंधरूप होने से (मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्) मोक्ष के कारणों को रोकने रूप स्वभाव वाला होने से (तत्) वह कर्म (निषिध्यते) निषेध किया जाता है ॥९॥

(शार्दूलविक्रीडित) १०९

सन्यस्तव्यमिद समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना।
सन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्यपापस्यवा
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवत्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयधावति ॥१०

अन्वयार्थ—(मोक्षार्थिना)मात्र के चाहने वालों को(इदं)यह(समस्तं अपि कर्म)सम्पूर्णकर्म(सन्यस्तव्यम् एव)छोड़ना ही चाहिये(तत्र)उस कर्म के (सन्यस्ते सति) छोड़ने पर(पुण्यस्य) पुण्य की (वा)अथवा(पापस्य) पापकी (किल) निश्चय से (का कथा) क्या कथा (भवत्) हो सक्ती है (सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्) सम्यग्दर्शन आदि आत्म स्व भाव होने से (मोक्षस्यहेतु) मोक्ष का कारण (भवत्) होता हुआ (नैष्कर्म्यप्रतिबद्धं) कर्मरहित स्वशागत (उद्धतरसं) प्रगट रस वाला (ज्ञानं) ज्ञान (स्वयं धावति) स्वतः दौड़ आता है ॥१०॥

(शार्दूलविक्रीडित) ११०

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यग्न सा।
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षति
कत्वत्रापि समुल्लसत्य वशतो यत्कर्म बधाय तत् ।
मोक्षायस्थितमेकमेव परम ज्ञान विमुक्त स्वत.॥११

अन्वयार्थ—(यावत् पाक) जब तक कर्म का उदय (उपैति) प्राप्त होता है (ज्ञानस्य) ज्ञान की (साकम विरति) वह कर्म शून्यता (सम्यङ् न) सच्ची नहीं है (तावत्) तब तक (कर्मज्ञानसमुच्चयोपि) कर्म और ज्ञान का मेल भी (विहित) किया गया है (काचित्क्षति) इसमें कोई हानि (नास्ति) नहीं है (किन्तु) परन्तु (अत्रापि) यहां पर भी (अवशत) आत्मा के वश के बिना (यत्कर्म) जो कर्म (समुल्लसति) उदय को प्राप्त होता है (तत्) वह कर्म (बधाय भवति) बंध के लिये होता है (स्वत) स्वय (विमुक्त) छूटा हुआ (परमम्) श्रेष्ठ (एक) एक (ज्ञानमेव) ज्ञान ही (मोक्षाय) मोक्ष के लिये (स्थित)स्थित होता है॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित) १११

मग्ना कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यत्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदति स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च

अर्थ —(मग्नाः) [illegible] (कर्मनयावलम्बनपराः) [illegible] (मग्नाः) [illegible] (यत् ज्ञानं) [illegible] (न जानन्ति) [illegible] (ज्ञाननयैषिणः अपि) [illegible] (मग्नाः) [illegible] (यत्) [illegible] (अतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः) [illegible] (विश्वस्योपरि) [illegible] (सततं) [illegible] (तरन्ति) [illegible] (ये स्वयं ज्ञानं भवन्तः) [illegible] (जातु) [illegible] (कर्म) [illegible] (न कुर्वन्ति) [illegible] (च) [illegible] (प्रमादस्य) [illegible] (वशं न यान्ति) [illegible] ॥११॥

(मन्दाक्रान्ता) ११२

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्धकेलि ।
ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण।१३

अन्वयार्थ—(पीतमोह) पिया है मोह को जिसने (भ्रमरसभरान्) निराकुलता रूप रस के भार से (भेदोन्माद) पुण्य और पाप रूप भेद के उन्माद को (नाटयत्) नचाने वाले (तत्सकल अपि कर्म) उस सम्पूर्ण कर्म को (बलेन) बल पूर्वक (मूलोन्मूलतया) मूल से उखाड़ कर (हेलोन्मीलत्परमकलया) क्रीड़ा मात्र से प्रगट उत्कृष्ट कला के (सार्द्धम्) साथ (आरब्धकेलि) प्रारम्भ कर दिया है क्रीड़ा को जिसने (क्षपितिततम) एवं अज्ञान अन्धकार को जिसने नाश कर दिया ऐसा (ज्ञानज्योति) ज्ञान रूपी महान तेज (भरेण प्रोज्जजृम्भे) अतिशय रूप से प्रगट हुआ ॥१२॥

॥ अथ आस्रवाधिकार लिख्यते ॥

(द्रुतविलंबित) ११३

अथ महामदनिर्भरमन्थर—
समररङ्गपरागतमास्रवं ।
अयमुदारगभीरमहोदयो—
जयतिदुर्ज्जयबोधधनुर्द्धरः ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके बाद (अयं) यह (उदारगंभीरमहोदय) विशाल गंभीर और महान उदय वाला (दुर्जयबोधधनुर्द्धर) दुःख से जानने योग्य ज्ञान रूपी धनुधारी (महामदनिर्भरमन्थरं) महान अहंकार के भार से व्याप्त (समररंगपरागत) युद्ध रूपी रंग भूमि में आये हुए (आस्रवं) आस्रव को (जयति) जीतता है ॥१॥

(शालिनी) ११४

भावोरागद्वेषमोहैर्विना यो—
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिवृत्त एव ।
रुन्धन्सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघा—
नेषो भाव सर्वभावास्रवाणाम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(जीवस्य) जीव का (य) जो (रागद्वेषमोहै विना) राग द्वेष और मोह के बिना (ज्ञाननिर्वृत्त) ज्ञान से रचा गया (भाव स्यात्) भाव होता है (एष) यह (भाव एव) भाव ही (सर्वभावास्रवाणां) सम्पूर्ण भावास्रवों का (सर्वान्) सभी (द्रव्यकर्मास्रवौघान) द्रव्य कर्मों के आस्रव रूप समूह को (रुन्धन्) रोकता हुआ (अभाव) अभाव रूप (स्यात्) होता है ॥२॥

(उपजाति) ११५

भावास्रवाभावमयंप्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्य स्वत एव भिन्न ।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥३॥

अन्वयार्थ—(भावास्रवाभावं) भावास्रव के अभाव को (प्रपन्न) प्राप्त हुआ (अयं) यह (द्रव्यास्रवेभ्य) द्रव्यास्रवों से (स्वत एव भिन्न) स्वयमेव भिन्न (अस्ति) है (सदा) निरन्तर (ज्ञानमयैकभाव) ज्ञान रूप

एक आस्रव (निरास्रव) आस्रव रहित (ज्ञायक) ज्ञाता रूप (ज्ञानी एव एवं भवति) ज्ञानी एव हो है ॥ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) ११६

सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयम्
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन् ॥
उच्छिन्दन् परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्।
नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥४

अन्वयार्थ—(निजबुद्धिपूर्वं) अपना बुद्धिपूर्वक (समग्र) समस्त (रागं स्वयं) राग को स्वयं (अनिशं) निरंतर (सन्न्यस्यन्) छोड़ता हुआ (अबुद्धिपूर्वमपि) अबुद्धिपूर्वक को (तं जेतुं) उस राग को जीतने के लिए (वारं वारं स्वशक्तिं) बार बार अपनी शक्ति को (स्पृशन्) स्पर्श करता हुआ (सकलां) समस्त (परवृत्तिं) पर परिणति को (उच्छिन्दन्) नाश करता हुआ (ज्ञानस्य पूर्णः) ज्ञान से पूर्ण [भवन्] होता हुआ (आत्मा यदा) आत्मा जब (नित्यनिरास्रवः) निरंतर आस्रव शून्य होता है (तदा हि) उस समय निश्चय से (ज्ञानी स्यात्) ज्ञानी होता है ॥४॥

(अनुष्टुप) ११७

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसंततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेतिचेन्मतिः॥५॥

अन्वयार्थ—(सर्वस्याम्) सभी (द्रव्यप्रत्ययसंततौ) द्रव्यास्रव की संतति के (जीवन्त्यां) जीते हुए (ज्ञानी) ज्ञानी (नित्यमेव) नित्य ही

(निरास्रव) आस्रव रहित (कुत स्यात्) कैसे हो सकता है (इति) ऐसी (चेत्) यदि (मति अस्ति) बुद्धि है (तर्हि) तो ॥५॥

(मालिनी) ११८

विजहति न हि सत्ता प्रत्यया पूर्ववद्धा
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपा ।
तदपिसकलरागद्वेषमोहव्युदासा—
दवतरति न जातु ज्ञानिन कर्मवन्ध ॥६॥

अन्वयार्थ—(यद्यपि) यद्यपि (पूर्ववद्धा) पहले अज्ञान अवस्था में बंध को प्राप्त हुए (द्रव्यरूपा) द्रव्य रूप (प्रत्यया) आस्रव (समय) अपनी कालकृत मर्यादा को (अनुसरन्त) अनुसरण करते हुए (सत्ता) सत्ता को (हि) निश्चय से (न विजहति) नहीं छोड़ते (तदपि) तो भी (ज्ञानिन) ज्ञानी के (कर्मबंध) कर्मबंध (सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्) सम्पूर्ण रागद्वेष मोह के निराकरण करने से (जातु) कभी (न अवतरति) नहीं होता है ॥६॥

(अनुष्टुप) ११९

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसभव ।
तत एव न बधोऽस्य ते हि बधस्य कारणम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस कारण (ज्ञानिन) ज्ञानी के (रागद्वेषविमोहाना) रागद्वेषविमोहका (असभव) असभव (अस्ति) है (तत) इस कारण से (एव) ही (अस्य) इस ज्ञानी के (ते) वे राग द्वेष मोह (हि) निश्चय से (बधस्य कारण न सन्ति) बध का कारण नहीं होते ॥७॥

(वसततिलका) १२०

अथ्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिन्ह—
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते ।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्त —
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारं ॥८॥

अन्वयार्थ—(ये) जो ज्ञानी (शुद्धनयं) शुद्ध नय को (अध्यास्य) स्वीकार कर (सदैव) निरन्तर (उद्धतबोधचिन्ह) प्रगट हो गया है ज्ञान रूपी चिन्ह जिसका ऐसा (एकाग्र्यम्) एकाग्रता को (कलयन्ति) धारण करते हैं (तेएव) वे ही (रागादिमुक्तमनस) रागादि से शून्य चित्त वाले (भवन्त) होते हुए (बन्धविधुर) बन्ध से रहित (समयस्य) समय के (सार) सारको (सततं) हमेशा (पश्यन्ति) देखते हैं ॥८॥

(वसततिलका) १२१

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु—
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः ।
ते कर्मबंधमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध—
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(ये) जो ज्ञानी (शुद्धनयतः) निश्चयनय अर्थात् शुद्धनय से (प्रच्युत्य) गिरकर अर्थात् छूटकर (विमुक्तबोधाः) ज्ञानशून्य होते हुए (पुनरेव) फिर से (रागादियोग) रागादि के सम्बंध को (उपयान्ति) प्राप्त करते हैं (ते) वे (इह) इस लोक में (पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः) पूर्व

और हुए द्रव्यों से (कृत विचित्रविकल्पजालम्) किया गया है विविध प्रकार का विकल्प समूह जिसने ऐसे (कर्मचयम् बिभ्रति) कर्म बंध को धारण करते हैं ॥६॥

(अनुष्टुप) १२२

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि ।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्यागाद्बन्ध एव हि॥१०

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से (शुद्धनय) शुद्धनय (हेय) छोड़ने योग्य (न अस्ति) नहीं है (इदं) यह (एव) ही (अत्र) यहां [illegible] अस्ति) अभिप्राय है (हि) क्योंकि (तदत्यागात्) उस शुद्धनय के नहीं छोड़ने से (बंध नास्ति) कर्मबंध नहीं होता है (तत्यागात्) [illegible] निश्चयनय के छोड़ने से (बंध) [illegible] (अस्ति एव) [illegible]

(शार्दूलविक्रीडित) १२३

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे [illegible] ।
त्याज्य शुद्धनयो न जातु कृतिभि [illegible]
तत्रस्था स्वमरीचिचक्रमचिरात् [illegible] निर्यद्बहिः
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ११

शुद्धनय (जातु) कभी भी (त्याज्य) छोड़ने योग्य (न अस्ति) नहीं है (तत्रस्था) उस अविनश्वर पद में रहने वाले ज्ञानी पुरुष (बहि: निर्यत्) बाह्यपदार्थों में घूमने वाले (स्वमरीचिचक्रं संहृत्य) अपने ज्ञान विकार को समेट कर (पूर्णं अचलं) परिपूर्ण निश्चल (ज्ञानघनौघ एक शान्त) ज्ञानघन के समूह रूप एक शान्तरस रूपी (महः) तेज को (अचिरात् पश्यन्ति) तत्काल देखते हैं ॥११॥

(मन्दाक्रान्ता) १२४

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतंकिमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा—
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत्।१२।

अन्वयार्थ—(रागादीनां आस्रवाणां झगिति) रागादि आस्रवों के शीघ्र ही (सर्वतः) सब तरफ से (विगमात्) दूर हो जाने के कारण (नित्योद्योत) सदा प्रकाशमान (किमपि परमं) किसी भी श्रेष्ठ (वस्तु पदार्थ को (अन्तः) अन्तरंग में (सम्पश्यतः) देखने वाले ज्ञानी के (स्फारस्फारैः) अनंतानंत (स्वरसविसरैः) अपने चैतन्य रस के विस्ता से (सर्वभावान् आलोकान्तात्) समस्त पदार्थों को लोक पर्य (प्लावयत्) प्रकाशित करता हुआ (अचलं अतुलं) अचल अनुप (एतत् ज्ञानम् उन्मग्नम्) यह ज्ञान प्रगट हुआ है ॥१२॥

॥ अथ संवराधिकार लिख्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १-५

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव
न्यक्कारात्प्रतिलब्धनित्यविजयं सम्पादयत्संवरम्
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुरत्
ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते

अन्वयार्थ—(आससारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्) अनादि संसार से विरोध करने वाले संवर का जय से एकान्त रूप से मद को प्राप्त हुए आस्रव के तिरस्कार करने से (प्रतिलब्धनित्यविजय) प्राप्त कर लिया है हमेशा की जीत को जिसने ऐसे (संवरं संपादयत्) संवर को प्राप्त कराता हुआ (पररूपत व्यावृत्त) पर द्रव्य से पृथक् (स्वरूप) निजरूप में (सम्यक्) भले प्रकार से (नियमितं) निश्चित (उज्ज्वल) निर्मल (निजरसप्राग्भार) आत्मरस का है भार जिसमें ऐसे (चिन्मय) चैतन्य स्वरूप (स्फुरज्ज्योति) स्फुरायमान प्रकाश (उज्जृम्भते) उदय को प्राप्त हो रहा है ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडित) १-६

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ॥
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः ।
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युता ॥

अन्वयार्थ — (चेद्रूप्य) चेतनारूपता को (च) और (जड़रूपता) अचेतनरूपता को (दधतो) धारण करने वाले (द्वयो) दोनों के (अंत) अन्तरंग में (दारुणदारणेन) भयंकर विदारण से (परित) सर्वथा (ज्ञानस्य) ज्ञान के (च) और (रागस्य विभागं) राग के विभाग को (कृत्वा) करके (निर्मलभेदज्ञान) निर्मल भेद ज्ञान (उदेति) उदय को प्राप्त होता है (हे सन्त) हे सज्जनो (यूयं) तुम सब (द्वितीयच्युता) पर पदार्थ से पृथक हुए (अधुना) इस समय (इद) अद्वितीय (शुद्धज्ञान घनौघम्) शुद्धज्ञान घन समूह रूप (इदं) इस भेद ज्ञान को (अध्यासिता मोदध्वम्) प्राप्त हुए आनन्दित हो ॥८॥

(मालिनी) १२७

यदिकथमपि धारावाहिना बोधनेन ।
ध्रुवमुपलभमान शुद्धमात्मानमास्ते ॥
तदयमुदयदात्मारामममात्मानमात्मा ।
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

अन्वयार्थ (यदि) यदि (धारावाहिना बोधनेन) धारावाही ज्ञान से (कथमपि) किसी भी तरह (ध्रुव) निश्चल (शुद्ध आत्मान) शुद्ध आत्मा को (उपलभमान) प्राप्त करता हुआ (आत्मा आस्ते) आत्मा हो (तत्) तो (अयं आत्मा) यह आत्मा (आत्मारामम्) आत्मीक रमण को (उदयत्) प्रगट करते हुए (परपरिणतिरोधात्) परपरिणति के निरोध से (शुद्धं आत्मानं एव अभ्युपैति) शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है ॥३॥

(मालिनी) १२८

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या ।
भवतिनियतमेषा शुद्धतत्त्वोपलम्भ ॥
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरे स्थिताना ।
भवति सति च तस्मिन्नक्षय कर्ममोक्ष ॥४॥

अन्वयार्थ—(भेदविज्ञानशक्त्या) भेद विज्ञान की शक्ति से (निज महिमरतानां) अपनी महिमा में लीन (एषा शुद्धतत्त्वोपलम्भ) इन पुरुषों के शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति (नियत) निश्चितरूप से (भवति) होती है (अखिलान्यद्रव्यदूरे) सम्पूर्ण अन्य द्रव्यों से पृथक् (स्थिताना) स्थित रहने वाले इन पुरुषों के (अचलित भवति) निश्चलता होती है (तस्मिन् सति) उस निश्चलता के होने पर (कर्ममोक्ष अक्षय भवति) कर्मों का विनाश अविनाशी होता है ॥४॥

(उपजाति) १२६

सम्पद्यतेसवरएव साक्षात्—
शुद्धात्म तत्त्वस्यकिलोपलभात् ।
सभेदविज्ञानत एव तस्मात्—
तद्भेदविज्ञानमतीवभाव्यम् ॥

अन्वयार्थ—(किल) निश्चय से (शुद्धात्मतत्त्वस्य) शुद्ध आत्मतत्त्व के (उपलभात्) प्राप्त होने से (साक्षात्) प्रगट रूप से (संवर एव) संवर ही (सम्पद्यते) प्रगट होता है (स) वह संवर (भेदविज्ञानत) भेद विज्ञान से (एव भवति) ही होता है (तस्मात्) इस कारण से

(भेद विज्ञानम्) भेद विज्ञान (अतीव) अतिशय रूप से (भाव्य) होना चाहिए अथवा भाना चाहिए ॥५॥

(अनुष्टुप) १३०

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥६॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह (भेदविज्ञानं) भेद विज्ञान (अच्छिन्न धारया) निरन्तर धाराप्रवाह से (तावत्) तब तक (भावयेत्) भाना चाहिए (यावत्) जब तक (ज्ञानं) ज्ञान (परात्) पर पदार्थ से (च्युत्वा) हटकर (ज्ञाने) ज्ञान में (प्रतिष्ठते) स्थित हो ॥६॥

(अनुष्टुप) १३१

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धाः ये किल केचन ॥७॥

अन्वयार्थ—(किल) निश्चय से (ये) जो (केचन) कोई (सिद्धाः) सिद्ध हुए हैं (ते भेदविज्ञानतः) वे भेद विज्ञान से (सिद्धाः) सिद्ध हुए हैं (किल) निश्चय से (ये) जो (केचन) कोई भी (बद्धाः) बंधे हैं (ते) वे (तस्य) उस भेद विज्ञान के (अभावतः) अभाव से (एव) ही (बद्धाः) बंधे हैं ॥७॥

(मदाक्रान्ता) १३२

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भात् ।
रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ॥

विभ्रतोप परममलालोकमम्लानमेक ।
ज्ञान ज्ञाने नियतमुदित शाश्वतोद्योतमेतत् ॥८॥

अन्वयार्थ—(भेदज्ञानोच्छलनकलनात्) भेद विज्ञान के प्रकाश को धारण करने से (शुद्धतत्त्वोपलंभात्) शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति से (राग ग्रामप्रलयकरणात्) राग समुदाय के विनाश करने से (कर्मणां संवरेण) कर्मों के संवर से (पर) श्रेष्ठ (तोषं) संतोष को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अमलालोकं) निर्मल है आलोक जिसका (शाश्वतोद्योतम्) निरन्तर है प्रकाश जिसका । एवंभूतं ऐसा (अम्लान) उज्ज्वल (एतत) यह (एकं ज्ञान) एक ज्ञान (ज्ञाने) ज्ञान में (नियत) निश्चित (उदितं) प्रगट हुआ है ॥८॥

॥७॥ अथ निर्जराधिकार लिख्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १२३

रागाद्यास्रवरोधतोनिजधुरान्धृत्वापर संवर
कर्मागामिसमस्तमेवभरतो दूरान्निरुन्धन्स्थित
प्रागबद्धतुतदेव दग्धमधुना व्याजृम्भतेनिर्जरा ।
ज्ञानज्योतिरपावृत नहि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति

अन्वयार्थ—(पर) श्रेष्ठ (संवर) संवर (रागाद्यास्रवरोधत) राग आदि आस्रवों के निरोध से (निजधुरा) अपनी शक्ति को (धृत्वा) धारण कर (आगामि) भविष्य में आने वाले (समस्त) सम्पूर्ण (कर्म) कर्म को (भरत) अपनी शक्ति के द्वारा (दूरात्एव) दूर से ही (निरुन्धन्) रोकता हुआ (स्थित) स्थित (अस्ति) है (निर्जरा) निर्जरा (अधुना)

इस समय (प्रागबद्ध) पूर्व में बांधे हुए (तन्‌) उस कर्म समूह को (दग्ध) नाश करने के लिए (व्याजृम्भते) तत्पर हो रही है (यत) क्योंकि (रागादिभि) रागद्वेषादि से (अपावृत) पृथक् हुई (ज्ञानज्योति हि) ज्ञानरूपी ज्योति निश्चय से (रागादिभि न मूर्च्छति) रागादिकों से लिप्त नहीं होती ॥१॥

(अनुष्टुप) १३४

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न वध्यते।२

अन्वयार्थ—(किल) निश्चय से (यत्) जो (कर्म) कर्म को (भुंजान) भोगता हुआ (अपि) भी (कर्मभि) कर्मों से (न बध्यते) नहीं बंधता है (तत्) वह (ज्ञानस्यैव) ज्ञान की ही (वा) अथवा (विरागस्यैव) विरागता की ही (सामर्थ्यं अस्ति) शक्ति है ॥२॥

(रथोद्धता) १३५

नाश्नुते विषयसेवनेऽपियत्स्वं फलविषयसेवनस्यना
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवक

अन्वयार्थ—(यत्) जो (ना) मनुष्य (विषयसेवनेऽपि) विषयों के सेवन में लगा हुआ भी (विषयसेवनस्य) विषय सेवन के (स्व) अपने (फल) फलको (न अश्नुते) नहीं भोगता है (तत्) तो (असौ) वह (ज्ञानवैभवविरागताबलात्) ज्ञान के वैभव और विरागता के बल से (सेवक अपि) विषयों का सेवक होता हुआ भी (असेवक अस्ति) विषयों का सेवन करने वाला नहीं है ॥३॥

(मन्दाक्रान्ता) १३६

सम्यग्दृष्टेर्भवतिनियत ज्ञानवैराग्यशक्तिः ।
स्व वस्तुत्व कलयितुमय स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ॥
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिद तत्त्वत: स्व पर च ।
स्वस्मिन्नास्ते विरमतिपरात्सर्वतोरागयोगात् ।४।

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टे) सम्यग्दृष्टि जीव के (नियत) निश्चय से (ज्ञानवैराग्यशक्ति) ज्ञान और विरागता की सामर्थ (भवति) होता है (यस्मात्) क्योंकि (अय) यह सम्यग्दृष्टि (स्व) अपने (वस्तुत्वम्) यथार्थ स्वरूप को (कलयितु) अभ्यास करने के लिए (स्वान्यरूपाप्ति मुक्त्या) अपने स्वरूप की प्राप्ति और पर रूप की मुक्ति से (इद) इस (व्यतिकर) भेद को (तत्त्वत) परमार्थ से (स्वम) अपने को (च) और (पर) परको (ज्ञात्वा) जानकर (स्वस्मिन्) निजमें (आस्ते) स्थित होता है (परात्) पर पदार्थ से (सर्वत) सब तरह (रागयोगात्) राग के योग से (विरमति) विरक्त होता है अर्थात् पृथक् होता है ॥४॥

(मदाक्रांता) १३७

सम्यग्दृष्टि स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बंता समितिपरता ते यतोऽद्यापि पापा-
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्तिसम्यक्त्वरिक्ता ।५

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (स्वय) स्वत (सम्यग्दृष्टि अस्मि) सम्यग्दृष्टि हूँ (अयं बंध) यह बंध (जातु) कभी भी (मे) मेरे (न स्यात्)

नहा हो सकता है (इति) इस प्रकार (उत्तानोत्पुलकवदना) अहंकार से उन्नत और रोमाचित हो गया है मुख और शरीर जिनका ऐसे (ते) वे (रागिणः) रागीजन (अपि) भी (आचरन्तु) महाव्रतादि का पालन करें और (समितिपरता) समितियों में तत्परता का (आलम्बताम्) आलम्बन करें (यत) क्योंकि (पापा) पापी पुरुष (अद्यापि) आज भी (आत्मानात्मावगमविरहात्) चेतन और अचेतन के ज्ञान से शून्य होने से (सम्यक्त्वरिक्ता सन्ति) सम्यग्दर्शन से शून्य हैं ॥५॥

(मन्दाक्रान्ता) १३८

आससारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ता ।
सुप्तायस्मिन्नपदमपद तद्विबुध्यध्वमन्धा ॥
एतैतेत पदमिदमिद यत्र चैतन्यधातु ।
शुद्ध. शुद्धः स्वरसभरत स्थायिभावत्वमेति ।५

अन्वयार्थ—(हे अन्धा) हे अज्ञानियो (अमी) ये (रागिणः) रागी पुरुष (प्रतिपद) पद पद पर (आससारात्) अनादि ससार से (यस्मिन्) जिस पद में (नित्यमत्ता) हमेशा से उन्मत्त हैं और (सुप्ता) सोये हुए हैं (हि) निश्चय से (यूय) तुम लोग (तत्) उस पद को (अपद) अपद (अपद) अपद (बुध्यध्वं) समझो (अत) इसलिए (यूय) तुम लोग (इदम् इदम्) इसी तरह (पद) पद को (एत एत) प्राप्त करो प्राप्त करो (यत्र) जिस पद में (शुद्ध शुद्ध) शुद्ध शुद्ध (चैतन्य धातु) चैतन्य द्रव्य (स्वरसभरत) अपने रस के भार से (स्थायी भावत्व एति) स्थिरता को प्राप्त करता है ॥६॥

(अनुष्टुप) १३६

एकमेव हि तत्स्वाद्य विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्त पदान्यन्यानि यत्पुर ॥७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (पद) पद (विपदा) आपत्तियों का (अपद) पद नहीं (अस्ति) है (हि) निश्चय से (तत् एव) वह ही (एक) एक पद (स्वाद्य) स्वाद लेने योग्य है (यत्पुर) जिसके सामने (अन्यानि पदानि) दूसरे पद (अपदानि एव भासन्त) अपद रूप ही मालूम होते हैं ॥७॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४०

एक ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वाद समासादयन्
स्वादन्द्वन्द्वमय विधातुमसह स्वावस्तुवृत्तिंविदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशोभ्रस्यद्विशेषोदय
सामान्य कलयत्किलैष सकल ज्ञान नयत्येकता ।८

अन्वयार्थ—(अय) यह (आत्मा) आत्मा (ज्ञायकभावनिर्भर महास्वाद) ज्ञायक भाव से परिपूर्ण महान् स्वाद वाले (एक) एक अर्थात् असाधारण स्वाद को (समासादयन्) संवादन करता हुआ (स्वा) अपनी (वस्तुवृत्तिविदन्) वस्तुस्थिति को जानता हुआ (द्वन्द्व) द्वंद्व रूप के (विधातु असह) करने में असमर्थ है (आत्मात्मानुभवानुभावविवश) अपने आत्मानुभव के प्रभाव से पराधीन (एष विशेषोदय) यह आत्मा विशेष उदय को (भ्रस्यत्) गौण करने वाले और (सामान्य) सामान्य उदय को (कलयत) प्राप्त करने वाले (सकल ज्ञान एकता किल नयति) समस्त ज्ञान की एकता को निश्चय से प्राप्त करता है ॥८॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४१

अच्छाच्छा स्वयमुच्छलन्तियदिमा संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरस स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवत्।
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकर ॥

अन्वयार्थ—(यत) जो (इमा) ये (अच्छाच्छा) अतिनिर्मल (निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव) अतिशयरूप से सम्पूर्ण पदार्थ समुदाय के रस के अत्यन्त बोझ से मत्त हुए मानो (संवेदन व्यक्तय) अनुभव के भेद (स्वयं) स्वत (उच्छलन्ति) उछलरहे हैं (यस्य) जिसका (अभिन्नरस) अभिन्न रस रूप (स) वह (एष) यह (भगवान) भगवान (एक अपि) एक होता हुआ भी (अनेको) अनेक (भवन्) होता हुआ (अद्भुतनिधि) विचित्र हैं निधियां जिसमें ऐसा (चैतन्य रत्नाकर) चैतन्यरूपी समुद्र [उत्कलिकाभि] उठती हुई तरङ्गों से (वल्गति) उछल रहा है ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४२

क्लिश्यन्ता स्वयमेवदुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखै कर्मभि
क्लिश्यन्ताञ्चपरे महाव्रततपो भारेणभग्नाश्चिर ।
साक्षान्मोक्ष इदंनिरामयपदंसंवेद्यमानस्वयम्
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपिप्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥

अन्वयार्थ—(केपि) कोई भी (दुष्करतरैं) अति कठिन (मोक्षोन्मुखै) मोक्ष से प्रतिकूल (कर्मभि) कर्मों से अर्थात् क्रियाओं से (स्वयमेव)

हुए हों (क्लिश्यतां) क्लेश को प्राप्त करें (परे) दूसरे (महाव्रततपोभारेण) महाव्रतों के और तपश्चरण के भार से (चिरं) चिरकाल तक (भग्नाः) पीड़ित हुए (क्लिश्यन्तां) दुःखी हों (इदं) यह (निरामयपदं) व्याधि रहित स्थान (स्वयं संवेद्यमानं) खुद अनुभव में आ रहा (ज्ञानं साक्षात् मोक्ष अस्ति) ज्ञान साक्षात् मोक्ष है (ज्ञानगुणं विना) ज्ञान गुण के बिना (ज्ञानं) ज्ञान को (प्राप्तुं) प्राप्त करने के लिए (हि) निश्चय से (कथमपि) किसी भी प्रकार से (न क्षमन्ते) समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १० ॥

(द्रुतविलम्बित) १४३

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं—
सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्—
कलयितुं यततां सततं जगत् ॥११॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह (पदं) ज्ञानरूप पद (ननु) निश्चय से (कर्मदुरासदं) कर्मों के द्वारा दुर्लभ है (किल सहजबोधकलासुलभं) किंतु स्वाभाविक ज्ञानरूप कला से सुलभ है (ततः इदं निजबोधकलाबलात्) इसलिए इस आत्मपद को अपनी ज्ञानरूप कला के बल से (कलयितुं जगत् सततं यततां) प्राप्त करने के लिए संसार निरन्तर यत्न करे ॥११॥

(उपजाति) १४४

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देव—
श्चिन्मात्रचिंतामणिरेव यस्मात् ।

सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते—
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(यस्मात् अचिन्त्यशक्ति) जिस कारण से अचिन्तनीय है सामर्थ्य जिसकी ऐसा (चिन्मात्रचिंतामणि) चैतन्यरूप चिन्तामणि (एव) ही (स्वयमेव) खुद ही (देव अस्ति) देव है (ज्ञानी सर्वार्थ सिद्धात्मतया) ज्ञानी सम्पूर्ण प्रयोजनों के सिद्धरूप हो जाने से (अन्यस्य परिग्रहेण किं विधत्ते) परपदार्थ के ग्रहण करने से क्या करेगा अर्थात् कुछ भी नहीं ॥१२॥

(वसन्ततिलका) १४४

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव—
सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुं ।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषा—
द्भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥१३॥

अन्वयार्थ—(इत्थं सामान्यतः) इस प्रकार सामान्यरूप से (समस्त एव परिग्रहम् अपास्य) सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़ कर (स्वपरयो अविवेकहेतु) अपने और परके अज्ञान के हेतु (अज्ञान उज्झितुमना) अज्ञान को छोड़ने का है चित्त जिसका ऐसा (अयं) यह ज्ञानी (अधुना विशेषात्) इस समय विशेषरूप से (भूयः त एव परिहर्तुम् प्रवृत्त) फिर उस ही परिग्रह को छोड़ने के लिए तत्पर हुआ है ॥१३॥

(स्वागता) १४६

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकाद्—
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोग ।

तद्भवतत्वथ च रागवियोगा—
न्नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिन यदि) ज्ञानी के यदि (पूर्वबद्धनिजकर्म विपाकात्) पूर्व के बंध हुए अपने कर्मों के फल से (उपभोग भवति) उपभोग होता है (तर्हि तत् भवतु) तो वह हो (रागवियोगात् नूनं) राग के वियोग से निश्चय से वह उपभोग (परिग्रहभाव न एति परिग्रह पने को नहीं प्राप्त होता है ॥१४॥

(स्वागता) १४७

वेद्यवेदकविभावचलत्वा—
द्वेद्यते न खलु काङ्क्षितमेव ।
तेन काङ्क्षति न किंचन विद्वान्—
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१५॥

अन्वयार्थ—(वेद्यवेदकविभावचलत्वात्) वेद्य और वेदक विभाव भाव चलत होने से (खलु विद्वान काङ्क्षित एव) निश्चय से ज्ञानी पुरुष इच्छित वस्तु को ही (न वेद्यते) नहीं जानता है (तेन किंचन न काङ्क्षति) तिस कारण से किसी भी वस्तु को नहीं चाहता (सर्वतः अपि सब तरह से भी (अतिविरक्ति उपैति) अत्यन्त वैराग्य को प्राप्त करता है ॥१५

[स्वागता] १४८

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभाव—
कर्मरागरसरिक्ततयेति ।

रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे—
स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥१६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः कर्म) ज्ञानी की क्रिया (रागरसरिक्ततया) रागरूपी रस से रहित होने के कारण (परिग्रहभावं न एति) परिग्रहपने को नहीं प्राप्त करता है (रंगयुक्तिः) राग की योजना अर्थात् सम्बन्ध (अकषायितवस्त्रे स्वीकृता) कषायले पन से रहित वस्त्र में (हि) निश्चय से (इह) जगत में (बहिः एव) बाहर ही (लुठति) लोटती है ॥

ज्ञानवान्स्वरसतोऽपि यतः स्या—
त्सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेष —
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१७॥

अन्वयार्थ—(यतः ज्ञानवान्) जिस कारण से ज्ञानवान् (स्वरसतः अपि) आत्मिकरस में भी (सर्वरागरसवर्जनशीलः) समस्त रागरूपी रस से रहित स्वभाववान (अस्ति) है (ततः) इस कारण से (एषः) यह ज्ञानी (कर्ममध्यपतितः अपि) कर्म के मध्य में पड़ा हुआ भी (सकलकर्मभिः न लिप्यते) समस्त कर्मों से लिप्त नहीं होता है ॥१७॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४०

यादृक्तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते ।

अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेत्ज्ञानं भवेत्संततम्
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बंधस्तव।

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (यस्य) जिस वस्तु का (वशात) अधीनता से (य) जो (यादृक् स्वभाव अस्ति) जैसा स्वभाव है (तस्य स्वभाव) उस वस्तु का स्वभाव (तादृक्) वैसा ही है (हि) निश्चय से (परे) दूसरा के द्वारा (एष) यह स्वभाव (अन्यादृश) अन्य प्रकार का (कथंचन अपि कर्तु न शक्यते) किसी भी तरह से करने में समर्थ न । है (हि अज्ञान कदाचन अपि) निश्चय से अज्ञान किसी भी तरह से (ज्ञान न भवत) ज्ञान नहीं हो सकता (हे ज्ञानिन्) हे ज्ञानी पुरुष (त्वम) तू (सततम् भवत) निरंतर विद्यमान (ज्ञान भुङ्क्ष्व) ज्ञान का आस्वादन कर (इह) इस लोक में (तव) तेरे (परापराधजनित) पर के अपराध से पैदा हुआ (बंध नास्ति) बंध नहीं है ॥ १८ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५१

ज्ञानिन्कर्मनजातुकर्तुमुचितंकिंचित्तथाप्युच्यते
भुङ्क्षेहन्तनजातु मे यदि परं दुर्भुक्तएवासिभो
बंध स्यादुपभोगतोयदि नतत्किंकामचारोऽस्तिते
ज्ञानसन्वसबन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥

अन्वयार्थ—(हे ज्ञानिन्) हे ज्ञानी (जातु) कभी भी (त्वया कर्म कर्तुं) तेरे द्वारा कर्म करना (उचित न अस्ति) योग्य नहीं है (तथापि त्वया) तो भी तेरे द्वारा (उच्यते) कहा जाता है (यत् अहं किंचित् भुङ्क्ते) कि मैं कुछ भोगता हूँ (मे परं जातु न) मेरे पर

वस्तु कदाचित नहीं है (ह्न यदि) ऐसा है यदि (ते परं नास्ति) तेरे पर वस्तु नहीं है (तर्हि भो) तो हे ज्ञानी (त्वं) तू (दुर्भुक्त एव असि) दुर आहारी ही है (यदि) यदि (उपभोगत ते बंध न स्यात) पर द्रव्य के उपभोग से तेरे बंध नहीं है (तत्) तो (ते काम चार किं अस्ति) तेरे इच्छानुसार भोग क्यों है (त्वं ज्ञानमय वस) तू ज्ञानरूप होता हुआ आत्म स्वरूप में निवास कर (अपरथा स्वस्य अपराधात् ध्रुव बंध एपि) अन्यथा अपने अपराध से निश्चित बंध को प्राप्त होगा ॥ १६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५२

कर्तारस्वफलनयत्किलबलात्कर्मैवनोयोजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेवहिफलप्राप्नोतियत्कर्मणः
ज्ञानसस्तदपास्तरागरचना नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपिहिकर्मतत्फलपरित्यागैकशीलो मुनि ॥

अन्वयार्थ—(किल कर्म एव) निश्चय से कर्म ही (यत्) जिस कारण से (स्वफलेन कर्तारं) अपने फल के साथ कर्ता को (बलात् नो योजयेत) बल पूर्वक युक्त नहीं करता है और (यत् कुर्वाणः फल लिप्सु) जिस कारण से कर्म का कर्ता हुआ फल की चाहने वाला (एव) ही (हि) निश्चय से (कर्मणः फल प्राप्नोति) कर्म के फल को प्राप्त करता है (तत्) इसलिये (अपास्तरागरचन) छोड़ दिया है राग की रचना को जिसने ऐसा (ज्ञान भवत) ज्ञानरूप होता हुआ और (कर्म कुर्वाणः अपि) कर्म का कर्ता हुआ भी (तत्फलपरित्यागैक शील) उस कर्म के फल का त्याग करना है एक स्वभाव जिसका ऐसा (मुनि कर्मणा नो बध्यते) मुनि कर्म से नहीं बंधता है ॥ • ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५३

त्यक्तं येनफलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपितत्कर्मावशेनापतेत्
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावेस्थितो
ज्ञानीकिं कुरुतेऽथकिं न कुरुते कर्मेति जानाति कः

अन्वयार्थ—(येन फलं त्यक्तं) जिसने कर्म फल को छोड़ दिया है और (कर्म) कर्म को (कुरुते) करता है (इति) ऐसा मानना (वयं न प्रतीमः) हम विश्वास नहीं करते (किन्तु) परन्तु (अस्य) इस के (कुतः) कहीं से (किंचित् अपि कर्मावशेन) कुछ भी कर्म के वश के बिना (तत् आपतेत्) वह कर्म उपस्थित हुआ है (तस्मिन् आपतिते) उस कर्म के उपस्थित होने पर (ज्ञानी) वह ज्ञानी (अकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थित) निश्चल परम ज्ञान रूप स्वभाव में स्थित हुआ (अथ) इसके बाद (किं कर्म कुरुते) उस कर्म को करता है (किं न कुरुते) किस कर्म को नहीं करता है (इति कः जानाति) इस बात को कौन जान सकता है ॥ १३ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५४

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंका विहाय स्वयं
जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि-

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टय एव) सम्यग्दृष्टि ही (इदं साहस कर्तु) इस साहस को करने में (परं क्षमन्ते) अतिशय रूप से ही समर्थ होते हैं (यत्भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि) जो भय से चलते तीनों लोक के जीवों ने छोड़ दिया गया है मार्ग जिसका ऐसे (वज्रे पतति) वज्र के गिरने पर (अपि) भी (अमी अत्र) ये सम्यग्दृष्टि जीव ही (निसर्गनिर्भयतया) स्वाभाविक निर्भीकता से (सर्वां शंकां विहाय) सारी शंका को छोड़ कर (स्वयं अवध्यबोधवपुषं) सुरबाधा रहित ज्ञानरूप शरीरवान (स्वं जानन्त) अपनी आत्मा को जानते हुए (हि) निश्चय कर (बोधात् न च्यवन्ते) ज्ञान से चलायमान नहीं होते ॥ २४ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५५

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः
लोकोऽयन्न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भी कुतो
निःशंकः सततस्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति २५

अन्वयार्थ—(एष लोकः) यह चैतन्यरूप लोक (एकः शाश्वत सकलव्यक्तः) एक नित्य समस्त पदार्थों में प्रगट है और (विविक्तात्मन चिल्लोकं) पृथक आत्मा के चैतन्य प्रकाश को (स्वयमेव अयम् एकक) स्वयं ही यह अकेला (लोकयति) अवलोकन करता है (अयं लोकः तव अस्ति) यह चैतन्य लोक तेरा है (अपरः लोकः तव नास्ति) दूसरा लोक तेरा नहीं है (परः अस्ति) पर है (तस्य तत् भीः कुतः भवेत) इस जीव के इस कारण से भय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (सः सततं निःशंकः) वह निरंतर शंका रहित (सहजं ज्ञान

सदा स्वयविन्दति) स्वभाविक ज्ञान को हमेशा स्वयमेव ही प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५६

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति

अन्वयार्थ—(ज्ञानिन) ज्ञानी के (हि) निश्चय से (एषा) यह (एषा एव) एक ही (वेदना अस्ति) वेदना है (यत्) जो कि (निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलात) अभिन्नरूप से उदित हुए वेद्य वेदक के बल से (अनाकुलैः सदा एक अचल) आकुलता रहित ज्ञानियों के द्वारा हमेशा एक निश्चल (ज्ञानं स्वयं वेद्यते) ज्ञान खुद ही जाना जाता है (अन्यागतवेदना हि न भवेत्) दूसरों के द्वारा आए हुए वेदना निश्चय से नहीं होती है (तत् ज्ञानिन भी कुत भवेत्) इस कारण ज्ञानी के भय कैसे हो सकता है (स सततं) वह ज्ञानी निरंतर (निःशंकः स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विन्दति) शंका रहित खुद स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

(शार्दूल विक्रीडित) १५७

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किलततस्त्रातंकिमस्यापरैः
अस्यात्राणमतो न किंचनभवेत्तद्भीः कुतोज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं सहजं ज्ञानं सदाविन्दति

अन्वयार्थ—(यत्) जो वस्तु (सत्) सत्रूप है (तत्) वह वस्तु (नाश न उपैति) नाश को प्राप्त नहीं होती (इति वस्तुस्थिति) ऐसी पदार्थ की मर्यादा (नियतव्यक्ता) नियम से स्पष्ट है (ज्ञान स्वयमेव सत्) ज्ञान स्वयं ही सत्रूप है (किल) निश्चय से (अस्य) इसका (तत्) वह ज्ञान (अपर) दूसरा से (त्रात) रक्षित (किं) कैसे हो सकता है (तत अस्य अत्राणं किंचन न) इसलिये इस ज्ञान के अत्राण कुछ भी नहीं है (अत ज्ञानिन तद्भी कुत भवेत्) इसलिये ज्ञानी के वह अरक्षा भय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (स सतत नि शक सहज ज्ञान सदा विन्दति) वह ज्ञानी निरतर निशक होता हुआ अपने स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४८

स्व रूप किल वस्तुनोऽस्तिपरमागुप्ति स्वरूपेण य
शक्त कोऽपि पर प्रवेष्टुमकृत ज्ञानस्वरूप च नु
अस्यागुप्तिरतो न काचनभवेत्तद्भी कुतोज्ञानि
नि शंक सतत स्वयं स सहज ज्ञान सदा विंदति

अन्वयार्थ—(वस्तुन स्व रूप किल परमागुप्ति अस्ति) वस्तु का निज रूप ही श्रेष्ठ गुप्त है (स्वरूपेण य कोऽपि प्रवेष्टु शक्त न भवेत्) वस्तु के निजरूप में दूसरा कोई भी प्रवेश करने में समर्थ नहीं हो सकता (यत) क्योंकि (अकृत) स्वाभाविक (ज्ञान) ज्ञान (नु) आत्मा (स्वरूप अस्ति) निजरूप है (अत अस्य अगुप्ति काचन नास्ति) इसलिये इस वस्तु का अरक्षा कोई भी नहीं है (अत ज्ञानिन तद्भी इसलिये ज्ञानी के उस अगुप्ति का भय (कुत भवेत्) कैसे हो सकता है

अर्थात् नहीं हो सकता (स) वह ज्ञानी (नि शक सन् सतत स्वयं सहज ज्ञान सदा विंदति) निशक होता हुआ निरंतर अपने स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ ५६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५६

ाणोच्छेदमुदाहरन्ति मरण प्राणा किलास्यात्मनो
ज्ञान तत्स्वयमेवशाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
स्यातो मरण नकिंचन भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो
नि शक सतत स्वय ससहज ज्ञान सदा विंदति ॥

अन्वयार्थ—(ये) जो मनुष्य (प्राणोच्छेद मरण उदाहरंति) प्राणों के विनाश को मरण कहते हैं (अस्य आत्मन प्राणा किल ज्ञान) इस आत्मा के प्राण तो निश्चय से ज्ञान है (तत्) वह ज्ञान (स्वयमेव शाश्वततया जातुचित नोच्छिद्यते) स्वय ही नित्य होने से कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है (अत तस्य मरण किंचन न) इसलिये उस आत्मा का मरण कुछ भी नहीं है (अत , इसलिए (ज्ञानिन तद्भी कुतो भवेत्) ज्ञानी के उस मरण का भय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (स नि शक सन् सतत स्वय सहज ज्ञान सदा विंदति) वह ज्ञानी निशक होता हुआ निरंतर अपने स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ।

(शार्दूलविक्रीडित) १६०

एक ज्ञानमनाद्यनन्तमचल सिद्ध किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिद सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदय ॥

तन्नाकस्मिकमत्रकिंचनभवेत्तद्भी कुतोज्ञानिनो
नि शङ्क सतत स्वय स सहज ज्ञान सदा विदति२८

अन्वयार्थ—(ज्ञान एक) ज्ञान एक है (अनाद्यनन्त अचल) अनादि है अनत है और अचल है (किल) निश्चय से (स्वतस्सिद्ध) यह बात स्वतमेव सिद्ध है इसलिये (यावत्) जबतक (इद) यह ज्ञान है (तावत) तबतक (इद) यह ज्ञान (सदैव) निरतर ही (हि) निश्चय से (भवेत्) रहता है (अत्र) इस ज्ञान में (द्वितीयोदय) दूसरे पदार्थ का उदय (न भवेत्) नहीं हो सकता (तत्) इसलिये (अत्र) इस ज्ञान मे (आकस्मिक किंचन न भवेत) अकस्मात् होने वाला कुछ भी नहीं हो सकता इसलिये (ज्ञानिन तद्भी कुत भवेत्) ज्ञानी के उस ज्ञान का भय कैसे हो सकता अर्थात नहीं हो सकता (स सतत नि शक सन् स्वय सहज ज्ञान सदा विन्दति) वह ज्ञानी निरतर नि शक होता हुआ अपने स्वभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

(मदाक्रान्ता) १६१

टङ्कोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाज ।
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकल घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म ॥
तत्तस्यास्मिन् पुनरपि मनाक् कर्मणो नास्ति बध:
पूर्वोपात्त तदनुभवतो निश्चित निर्जरैव ॥२६॥

अन्वयार्थ—(टङ्कोत्कीर्णस्वरसनिचित ज्ञानसर्वस्वभाज) टङ्कोत्कीर्ण निजरस से भरा ज्ञान रूप सर्वस्व का भोगने वाले (सम्यग्दृष्टे ...)

सम्यग्दृष्टि के जो (बन्धमार्गणि) निश्चयकर्मा नि स (भवन्ति) होते हैं वे (इह) इस लोक में (सकल कर्म घ्नन्ति) समस्त कर्म का नाश करते हैं (तत्तस्य अस्मिन्) इसलिए उस सम्यग्दृष्टि के इस लोक में (पुन मनागपि) फिर थोडा भी (कर्मणो बंधं नास्ति) कर्म का बंध नहीं होता (तदनुभवत पूर्वोपात्त) उस बंधभाव के अनुभव से पूर्व में संचित हुए कर्म (निश्चित निर्जरा एव) निश्चित रूप से निर्जीर्ण हो जाते हैं ॥२६

(मन्दाक्रान्ता) १६२

रुन्धन्बन्ध नवमितिनिजै सगतोष्टाभिरगै ।
प्राग्बद्ध तु क्षयमुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन ॥
सम्यग्दृष्टि स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्त ।
ज्ञानभूत्वा नटति गगनाभोगरग विगाह्य ॥३०

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टि) सम्यग्दृष्टि जीव (स्वय अतिरसात्) स्वत अतिशयरूप से (आदिमध्यान्तमुक्त) आदि मध्य और अंत से रहित (ज्ञान भूत्वा) ज्ञान रूप होकर (निजै अष्टाभि अगै) अपने आठ अंगों से (सगत सन्) सहित होता हुआ (इति) इस तरह से (नवम् बंध रुन्धन्) नवीन बंध को रोकता हुआ (तु) और (निर्जरोज्जृम्भणेन) निर्जरा की वृद्धि से (प्राग्बद्ध क्षय उपनयन्) पूर्व में बांधे गये कर्मों के क्षय को प्राप्त करता हुआ (गगनाभोगरंग) आकाश के मध्य भाग रूप रंग भूमि में (विगाह्य नटति) प्रवेश करके नाचता है ॥३०॥

॥८॥ अथ बंधाधिकार प्रारभ्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १६३

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वाप्रमत्तं जगत्
क्रीडन्तरसभारनिर्भरमहा नाट्येन बंधधुनत्
आनंदामृतनित्यभोजि सहजावस्थास्फुटन्नाटयत्
धीरोदारमनाकुल निरुपधि ज्ञान समुन्मज्जति॥१

अन्वयार्थ—(रागोद्गारमहारसेन) राग के उदय रूप महान् रस से (सकलं जगत्प्रमत्तं कृत्वा) सम्पूर्ण जगत को प्रमादी करके (रसभार निर्भरमहानाट्येन) रस के भार से भरे हुए महान नृत्य से (क्रीडन्त) क्रीडा करने वाले (बंधधुनत्) बंध को कपाता हुआ (आनन्दामृतनित्य भोजि) आनन्दरूपी अमृत का निरंतर आहार करने वाला (सहजावस्था स्फुटं नाटयत्) अपनी स्वाभाविक अवस्था को स्पष्टता से नचाता हुआ (धीरोदार अनाकुल निरुपधि ज्ञान समुन्मज्जति) धीर और उदार आकुलतारहित और परिग्रह रहित ज्ञान उदय को प्राप्त होता है ॥१॥

(पृथ्वी) १६४

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा।
ननैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बंधकृत् ॥
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः।
स एव किल केवलं भवति बंधहेतुर्नृणाम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(कर्मबहुल) कर्मरूप पुद्गलों से भरा हुआ (जगत् बंधहेतु नास्ति) लोक बंध का कारण नहीं है (चलनात्मक कर्म बंधहेतु

नास्ति) मन वचन काय का परिस्पन्दात्मक क्रिया बंध का कारण नहीं है (तानिकरणानि न बंधहेतुः न) और अनेक करण अर्थात् इन्द्रियां बंध का कारण नहीं हैं (चित् अचित् वध न बंधहेतुः अस्ति) चेतन और अचेतन का घात बंध को करने वाला नहीं है (यत्) किन्तु (यः) जो (उपयोगभूः रागादिभिः ऐक्यं समुपयाति) ज्ञान स्वरूप आत्मा रागादिकों के साथ एकता को प्राप्त होता है (किल स एव केवलं नृणां बंधहेतुः भवति) निश्चय से वही आत्मा की निज मति ही बंध का कारण है ॥ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १६४

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पन्दात्मकं कर्म तत्-
तान्यस्मिन्करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत्
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन् केवलं
बंधं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवम् ॥३

अन्वयार्थ—(तत लोकः कर्म) इसलिये लोक कार्माण वर्गणाओं से भरा हुआ (अस्तु) रहो (परिस्पन्दात्मकं कर्म अस्तु) मन वचन काय का हलन चलन रूप वह योग रहो (तत् कर्म अस्तु) वह क्रिया भी रहो (तानि करणानि सन्तु) वे करण भी रहें (च) और (तत् चित् अचित् व्यापादनं) वह चेतन और अचेतन का घात भी (अस्मिन् अस्तु) इसमें रहो (अयं सम्यग्दृगात्मा रागादीन् उपयोगभूमिं अनयन्) यह सम्यग्दृष्टि आत्मा राग द्वेष आदि को आत्मा में नहीं प्राप्त करता हुआ (केवलं ज्ञानं भवन्) सिर्फ ज्ञानरूप होता हुआ (कुतः अपि बंधं ध्रुवं न उपैति) किसी भी तरह से बंध को निश्चय से नहीं करता (अहो) यह आश्चर्य है ॥ ॥

(पृ॰ वृ॰) १६६

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां।
तदायतनमेव सा किलनिरर्गला व्यापृत्ति ॥
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिना।
द्वय न हि विरुध्यतेकिमु करोति जानाति च ।४।

अन्वयार्थ (तथापि) अर्थात् लोक आदि कारणों से बंध नहीं होता किन्तु रागादिरूप विभाव भावों से ही बंध होता है तो भी (ज्ञानिनां निरर्गलं चरितुं न इष्यते) ज्ञानियों को स्वच्छन्द आचरण करना योग्य नहीं है (किल) निश्चय से (सानिरर्गला व्यापृत्ति तदायतन एव) वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति बंध का ही कारण है (ज्ञानिना अकामकृतकर्म अकारणं मतं) ज्ञानियों के बिना इच्छा से किया गया कार्य बंध का अकारण माना गया है (हि) निश्चय से (तत्) ये (द्वयं) दोनों (जानाति च करोति) जानते भी हैं और करते भी हैं (किमु) क्या ये दोनों क्रियायें (न विरुध्यते) विरोध को प्राप्त नहीं होतीं अर्थात् होती ही हैं ॥४॥

(वसन्ततिलका) १६७

जानाति य स न करोति करोति यस्तु।
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मराग ॥
राग त्वबोधमयमध्यवसायमाहु—
मिथ्यादृश स नियत स च बन्धहेतु ॥५॥

अन्वयार्थ—(य जानाति) जो जानता है (स करोति न) वह करता नहीं है (य करोति स जानाति न) जो करता है वह जानता

कहा है (खलु) निश्चय से (अयं कर्मराग) यह कर्म का राग है (रागं तु अबोधमय अध्यवसाय आहु) रागको तो अज्ञानरूप अध्यवसाय कहते हैं (स) वह अध्यवसाय (मिथ्यादृश) मिथ्यादृष्टि जीव के (नियतं) नियम से (बंधहेतु) बंध का कारण है ॥५॥

(वसन्ततिलका) १६८

सर्वं सदैवनियतं भवति स्वकीय—
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य ।
कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(इह मरणजीवितदुःखसौख्यम्) इस लोक में मरण जीवन दुःख और सुख (सर्वं सदैव स्वकीयकर्मोदयात्) सभी हमेशा अपने कर्म के उदय से हो (नियतं भवति) नियम से होते हैं (यत्तु) जो लोग यह कहते हैं कि (परः पुमान् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं कुर्यात्) दूसरा मनुष्य दूसरेके मरण जीवन दुःख और सुख को वह करता है (एतत् अज्ञानं अस्ति) यह अज्ञान है ॥६॥

(वसन्ततिलका) १६९

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य ।
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥
कर्माण्यहंकृतिरसेनचिकीर्षवस्ते ।
मिथ्यादृशो नियतमात्महतो भवन्ति ॥७॥

अन्वयार्थ—(ये परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यम्) जो पर के मरण जीवन दुःख और सुख को (परात् पश्यन्ति) पर से किया हुआ देखते हैं (एतत् अज्ञानं अधिगम्य) इस अज्ञान को प्राप्त कर (अहंकृतिरसेन कर्माणि चिकीर्षवः) अहंकाररूप रस से मरण को दुःख को और सुख को करने की इच्छा करने वाले (ते मिथ्यादृशः नियतं आत्महनो भवन्ति) वे मिथ्यादृष्टि जीव नियम से अपना आत्मा का घात करने वाले होते हैं ॥७॥

(अनुष्टुप) १७०

मिथ्यादृष्टे स एवास्य बन्धहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्मास्य दृश्यते ॥८॥

अन्वयार्थ—(अस्य मिथ्यादृष्टेः विपर्ययात्) इस मिथ्यादृष्टि का विपरीतता से (स एव) वह अध्यवसाय ही (बन्धहेतु) बंध का कारण है (अस्य) इस मिथ्यादृष्टि का (य अयं अध्यवसाय) वह यह अध्यवसाय विपरीतता होने से (अज्ञानात्मा) अज्ञानरूप (एव दृश्यते) ही देखा जाता है ॥८॥

(अनुष्टुप) १७१

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहित ।
तत्किंचनापि नैवाऽस्ति नात्माऽऽत्मानं करोतियत्

अन्वयार्थ—(आत्मा) आत्मा (निष्फलेन) निरर्थक (अनेन अध्यवसायेन विमोहित) इस अध्यवसाय से व्यामोह को प्राप्त हुआ (तत्किंचनअपि) वह कोई भी वस्तु (नैवाऽस्ति) नहीं है (यत् आत्मानं न करोति) जिसको अपने रूप नहीं करता अर्थात् सब को अपने रूप कर लेता है ॥९॥

(इन्द्रवज्रा) १८२

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा—

दात्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।

मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष—

नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यत्प्रभावात् विश्वात् विभक्त अपि) जिसके प्रभाव से भिन्न प्रथक होता हुआ भी (आत्मा विश्व आत्मानं विदधाति) आत्मा विश्वरूप अपने को करता है (हि एष मोहैककन्द) निश्चय से यह मोह का है एक कारण जिसका ऐसा (अध्यवसाय इह येषा नास्ति) अध्यवसाय इस लोक में जिनके नहीं है (ते एव यतयः सन्ति) वे ही मुनि हैं ॥१०॥

(शार्दूलविक्रीडित) १८३

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै ।

तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजित

सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं ।

शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥

अन्वयार्थ—(जिनै सर्वत्र अखिल अध्यवसान त्याज्य उक्त) जिनेन्द्र भगवान ने जो सभी वस्तुओं में सम्पूर्ण अध्यवसान को त्यागने योग्य कहा है (तत् अहं अन्याश्रय निखिलोऽपि व्यवहार एव) उसमें पराश्रित रूप जान समस्त व्यवहार ही को (त्याजित) छुडाया है (एवं मन्ये) इस प्रकार मानता हूं (तत् अमी सन्त एकं सम्यक्

निश्चय) तो ये सन्त पुरुष एक स्वभाव रूप (दृढ़) निश्चय को (एव निष्कम्पम् आत्मस्य शुद्धज्ञानघन निजमहिमनि) हो निश्चलरूप से प्राप्त करके निर्मल ज्ञान घनरूप अपनी महिमा में (धृतिम् किं न जानन्ति) स्थिरता को क्या नहीं धारते यही आश्चर्य है ॥१॥

(उपजाति) १७४

रागादयो बंधनिदानमुक्ता—
स्ते शुद्धचिन्मात्र महोऽतिरिक्ता ।
आत्मापरो वा किमु तन्निमित्त—
मितिप्रणुन्ना, पुनरेव माहु. ॥१२॥

अन्वयार्थ—(रागादय बंधनिदान उक्ता) रागद्वेष आदि बंध के कारण कहे गये हैं (ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ता) वे रागादि शुद्ध चैतन्य रूप तेज से भिन्न हैं (तन्निमित्त आत्मा अस्ति) उन रागादिकों का कारण आत्मा है (वा पर किमु) अथवा दूसरा कोई पुद्गल आदि कौन है (इति) इस प्रकार (प्रणुन्ना) पूछे जाने पर आचार्य (पुन एव आहु) फिर ऐसा कहते हैं ॥१२॥

(उपजाति) १७५

न जातु रागादिनिमित्तभाव—
मात्माऽऽत्मनो याति
तस्मिन्निमित्त ...
वस्तुस्वभावो-

अन्वयार्थ—(आत्मा आत्मन रागादिनिमित्तभाव) आत्मा अपने रागादिनिमित्त के भाव को (जातु न याति) कभी भी प्राप्त नहीं होता (तस्मिन् परसंग एव) उस आत्मा में पर पदार्थ का संयोग ही (निमित्तंभवति) निमित्त होता है (यथा अर्ककान्त) जैसे सूर्यकान्त मणि स्वभाव से तो उष्ण नहीं है, किन्तु सूर्य के संबंध से अग्निरूप हो जाती है (अयं वस्तु स्वभाव) यह वस्तु का स्वभाव (एव) ही (तावत् उदेति) निश्चय से उदय को प्राप्त होता है ॥१३॥

(अनुष्टुप) १७६

इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन स
रागादीन्नात्मन. कुर्यान्नातो भवति कारक ।१४।

अन्वयार्थ—(इति ज्ञानी स्व) इस तरह ज्ञानी अपने (वस्तु स्वभाव) वस्तु के स्वभाव को (जानाति) जानता है (तेन स) इस कारण से वह ज्ञानी (रागादीन् आत्मन न कुर्यात्) रागादिकों को अपने नहीं करता (अत कारक न भवति) इसलिये रागादि का कर्ता नहीं होता है ॥१४॥

(अनुष्टुप) १७७

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वत्ति तेन स ।
रागादीनात्मन कुर्यादतो भवति कारक ॥१५॥

अन्वयार्थ—(इति स्व वस्तुस्वभाव अज्ञानी न वत्ति) इस अपने वस्तु के स्वभाव को अज्ञानी नहीं जानता है (तेन) इस कारण (स रागादीन् आत्मन कुर्यात) वह अज्ञानी रागद्वेषादिकों को अपने करता है (अत कारक) इसलिये रागद्वेषादि का कर्ता (भवति) होता है ॥१५॥

(शार्दूलविक्रीडित) १७९

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्
तन्मूलां बहुभावसंततिमिमामुद्धर्तुकामः समम्
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति

अन्वयार्थ—(इत्यालोच्य तत् समग्रं परद्रव्यं बलात् विवेच्य) ऐसा विचार कर उस समस्त परद्रव्य को बलपूर्वक पृथक् कर (तन्मूलां इमां बहुभावसंततिम्) उस परद्रव्य है मूल कारण जिसका ऐसी इस बहुत भावों की परिपाटी को (समं उद्धर्तुकामः) एक साथ नाश करने की इच्छा करने वाला (किल) निश्चय से (एष भगवान् आत्मा येन उन्मूलितबन्धः) यह भगवान् आत्मा जिस परिणाम से उखाड़ दिया है बंध को जिसने ऐसा होता हुआ (निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्) अतिशय रूप से बहने वाले परिपूर्ण एक ज्ञान से युक्त (आत्मानं समुपैति) आत्मा को प्राप्त करता है (एष भगवान् आत्मा आत्मनि स्फूर्जति) यह भगवान आत्मा अपने में स्फुरायमान होता है ॥१७९॥

(मंदाक्रान्ता) १८०

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां।
कार्यं बंधं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य॥
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधुसन्नद्धमेतत्।
तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति॥१७॥

अन्वयार्थ—(रागादीना कारणाना कन्य अन्य) रागादि कारणों के कन्द को निरन्तर प्रेरक (दारयत्) नाश करता हुआ (विविध बध कार्य अधुना सद्य एव प्रणुद्य) नाना प्रकारके बध रूप कार्य को इस समय तत्काल ही दूर कर (ध्वान्ततिमिर) नाश कर दिया है अज्ञान रूप अंधकार को जिसने (एतज्ज्ञान ज्योति) यह ज्ञान रूपी प्रकाश (तद्वत् साधुसन्नद्ध तत्पर स्यात) इस तरह से भली भांति तत्पर होता है (यद्वत् अस्य प्रसर अपर कोऽपि न आवृणोति) जिस तरह से इसके विस्तार को दूसरा कोई भी नहीं रोक सकता है ॥१७॥

॥ ६ ॥ अथ मोक्षाधिकार प्रारभ्यते ॥

(शिखरणी) १८०

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बधपुरुषौ ।
नयन्मोक्षसाक्षात्पुरुष मुपलंभैकनियत ॥
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानंदसरस ।
पर पूर्ण ज्ञान कृतसकलकृत्य विजयते ॥१॥

अन्वयार्थ—(प्रज्ञाक्रकचदलनात्) प्रज्ञा रूप करौत के द्वारा विदारण करने से (बधपुरुषौ) बध और आत्मा को (द्विधाकृत्य) पृथक कर (उपलंभैकनियतं) निज स्वरूप की प्राप्ति रूप से निश्चित (पुरुष साक्षात् मोक्ष नयत) आत्मा को साक्षात् रूप से मोक्ष में लेजाता हुआ (सहजपरमानदसरस) स्वाभाविक उत्कृष्ट आनन्दरूप रस सहित (पर) श्रेष्ठ (पूर्ण) परिपूर्ण (कृतसकलकृत्यं ज्ञान) समस्त कार्य को कर चुका ज्ञान (इदानीम् उन्मज्जत् विजयते) इस समय प्रगट होता हुआ सर्वोत्कृष्ट रूप से है ॥१॥

(स्रग्धरा) १८१

प्रज्ञाच्छेत्रीशितेयं कथमपिनिपुणै पातितासावधानैं
सूक्ष्मेऽन्तः सन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य
आत्मानमग्नमंत. स्थिरविशदलसद्धाम्निचैतन्यपूरे
बंधचाज्ञानभावेनियमितमभितः कुर्वतीभिन्नभिन्नौ

अन्वयार्थ—(सावधानैं निपुणै) सावधान निपुण अर्थात् चतुर पुरुषों से (कथमपि) किसी भी प्रकार से (पातिता) डाली गई (शिता) पैनी (इयं, इयं (प्रज्ञा) भेद विज्ञान रूपी (छत्री) छैनी (रभसात्) वेग से (आत्मकर्मोभयस्य) आत्मा और कर्म दोनों के (सूक्ष्मे अंतःसंधिबन्धे) सूक्ष्म अंतरंग में आई सन्धि में (निपतति) गिरती है (अंतः स्थिरविशदलसद्धाम्नि) अंतरंग में निश्चल और निर्मल शोभायमान है तेज जिसका ऐसे (चैतन्यपूरे आत्मानं मग्नं कुर्वंता) चैतन्य के पुंज में आत्मा को मग्न करती हुई (च) और (बंधं अज्ञानभावे कुर्वती) बंध को अज्ञान भावों में करती हुई (नियमितं अभितः भिन्नभिन्नौ करोति) निश्चय रूप से दोनों को पृथक् पृथक् करती है ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडित) १८२

भित्वासर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तु हि यच्छक्यते
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमाशुद्धश्चिदेवास्म्यहं ।
भिद्यन्ते यदिकारकाणि यदिवाधर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदाऽस्तिकाचनविभौभावेविशुद्धेचिति

अन्वयार्थ—(स्वलक्षणबलात् सर्वं) अपने लक्षण के बल से भिन्न (भित्वाऽपि) भिन्न करके भी (यत्) जो (हि) निश्चय से (भत्तु) भेद करने में (शक्यते) समर्थ है (चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा) चैतन्य मुद्रा से चिह्नित निर्विभाग महिमावाला (शुद्धा चिदेवाहं अस्मि) निर्मल चैतन्य रूप ही मैं हूँ (यदि कारकाणि) यदि कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान और अधिकरण (यदि वा) अथवा (धर्मा) नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व आदि अनेक धर्म (यदि वा) अथवा (गुणा) ज्ञान दर्शन आदि गुण (भिद्यन्ते) भेद को प्राप्त होते हैं (तर्हि) तो (भिद्यन्ताम्) भेद को प्राप्त हों (विशुद्धे विभौ चिति) निर्मल व्यापक चैतन्य रूप (भावे काचन भिदा नास्ति) भाव में कोई भी भेद नहीं है ॥ ॥

(सम्बरकाता) १८३

अद्वैताऽपि हि चेतनाजगतिचेद्दृग्ज्ञप्तिरूप त्यजेत्
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्माऽस्ति त्वमेव त्यजेत्
त्त्यागे जडताचितोऽपिभवति व्याप्योविनाव्यापका
दात्माचान्तमुपैति तेननियत दृग्ज्ञप्तिरूपास्तुचित्॥

अन्वयार्थ—(चेत् जगति चेतना) यदि जगत में चेतन (हि) निश्चय से (अद्वैता) अद्वैत है (तर्हि) तो (दृग्ज्ञप्तिरूप त्यजेत्) दर्शन और ज्ञान रूप को छोड़ (तत्) तो (सामान्यविशेषरूपविरहात्) सामान्य और विशेष रूप का अभाव होने से (अस्तित्वम् एव) अपने अस्तित्व को ही (त्यजेत्) छोड़ देगा (तत्त्यागे चितः अपि जडता भवति) उस चेतनारूप अस्तित्व के छोड़ने पर चैतन्य के भी अचेतनता हो जायगी (व्याप्य आत्मा) व्याप्य आत्मा (व्यापकात् विना अन्तं उपैति) व्यापक चैतन्य के बिना विनाश को प्राप्त हो जायगा

(स्रग्धरा) १८१

प्रज्ञाच्छेत्रीशितेयं कथमपिनिपुणैः पातितासावधानैः
सूक्ष्मेऽन्त सधिबंधे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य
आत्मानमग्नमंत स्थिरविशदलसद्धाम्निचैतन्यपूरे
बंधचाज्ञानभावेनियमितमभित कुर्वतीभिन्नभिन्नौ

अन्वयार्थ—(सावधानैः निपुणैः) सावधान निपुण अर्थात् चतुर पुरुषों से (कथमपि) किसी भी प्रकार से (पातिता) डाली गई (शिता) पैनी (इयं) यह (प्रज्ञा) भेद ज्ञान रूपी (छेत्री) छैनी (रभसात्) वेग से (आत्मकर्मोभयस्य) आत्मा और कर्म दोनों के (सूक्ष्मे अन्त सधिबंधे) सूक्ष्म अन्तरंग में आई हुई संधि में (निपतति) गिरता है (अंत स्थिरविशदलसद्धाम्नि) अन्तरंग में निश्चल और निर्मल प्रकाशमान है तेज जिसका ऐसे (चैतन्यपूरे आत्मानं मग्नं कुर्वती) चैतन्य के पूर्ण आत्मा को मग्न करती हुई (च) और (बंध अज्ञान भावे कुर्वती) बंध को अज्ञान भावों में करता हुआ (नियमित अभित भिन्नभिन्नौ करोति) निश्चय रूप से दोनों को पृथक् पृथक् करता है ॥४॥

(शार्दूलविक्रीडित) १८२

भित्वासर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते ।
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमाशुद्धश्चिदेवास्म्यहं ।
भिद्यन्ते यदिकारकाणि यदिवाधर्मा गुणा वा यदि ।
भिद्यन्तां न भिदाऽस्तिकाचनविभौभावेविशुद्धेचिति

त्रि मम न) क्योंकि ये समस्त भाव परद्रव्य हैं मेरे नहीं हैं ॥६॥

(अनुष्टुप) १-६

रद्रव्यग्रहं कुर्वन्, बध्यतेऽपराधवान् ।
बध्येतानपराधो न, स्वद्रव्ये संवृतो मुनि ॥७॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यग्रहं कुर्वन् अपराधवान्) परद्रव्य को ग्रहण करता हुआ अपराधी (एव बध्यते) ही बंध को प्राप्त होता है (स्वद्रव्ये संवृत मुनि अनपराध न बध्यते) अपने द्रव्य में लीन मुनि अपराध रहित हैं इसलिये बंध को प्राप्त नहीं होता ॥७॥

(मालिनी) १८७

अनवरतमनन्तै बध्यते सापराध ।
स्पृशति निरपराधो बंधनं नैव जातु ॥
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो ।
भवति निरपराध साधुशुद्धात्मसेवी ॥८॥

अन्वयार्थ—(सापराध अनवरत अनन्तै) अपराधी निरन्तर अनन्त कर्मरूप पुद्गलों से (बध्यते) बंधता है (निरपराध जातु बंधनं न) अपराध रहित कभी भी बंध को नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता (अयं) यह (अशुद्धं स्वं भजन्) अशुद्ध अपने को भजता हुआ (नियतं सापराध एव भवति) नियम से अपराधी होता ही है (शुद्धात्मसेवी साधु निरपराध भवति) शुद्ध आत्मा का सेवन करने वाला साधु निरपराधी होता है।

(तत चिद् नियत दृग्ज्ञप्तिरूपा) इस कारण से चैतन्य आत्मा निरन्तर ही दर्शन ज्ञान रूप है ॥८॥

(अनुष्टुभ्) १८४

एकश्चितश्चिन्मयएवभावोभावा परेयेकिल तेपरेषां
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एवभावो भावा. परेसर्वतएवहेयाः

अन्वयार्थ—(चित) चैतन्य का (एक) एक (चिन्मय एव) चैतन्यमय ही (भाव अस्ति) भाव है (ये) जो (परे भावा) अन्य भाव हैं (ते) वे (किल) निश्चय से (परेषां) पर के हैं (तत) इसलिए (चिन्मय भाव एव) चैतन्यमय भाव ही (ग्राह्य) ग्रहण करने योग्य है (परे भावा) परभाव (सर्वत हेया एव सन्ति) सब तरह से त्यागने योग्य ही हैं ॥५॥

(शार्दूलविक्रीडित) १८५

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि सेव्यतां
शुद्ध चिन्मयमेकमेवपरमज्योति सदैवास्म्यहम् ।
एते येनु समुल्लसन्ति विविधा भावा पृथग्लक्षणा
तेऽहं नाऽस्मि यतोऽत्र मम परद्रव्य समग्रा अपि

अन्वयार्थ—(उदात्तचित्तचरितै मोक्षार्थिभि) निर्मल है मन और आचरण जिनका ऐसे मोक्ष को चाहने वाले (अयं सिद्धान्त सेव्यतां) इस सिद्धान्त का सेवन करें (अहं शुद्ध एक चिन्मय परमं ज्योति) मैं शुद्ध एक चैतन्य और ज्योति रूप (एव) ही (सदैव अस्मि) हमेशा से हूँ (तु) और (ये एते पृथग्लक्षणा विविधा भावा) जो ये भिन्न भिन्न लक्षण वाले नाना प्रकार के भाव (समुल्लसन्ति) हो रहे हैं (ते अहं नास्मि) वे मैं नहीं हूँ (यत ते समग्रा परद्

[त मम न) क्योंकि ये समस्त भाव परद्रव्य हैं ये मेरे नहीं हैं ॥५॥

(अनुष्टुप) १८६

[परद्रव्यग्रहं कुर्वन्, वध्यतैवापराधवान् ।
[वध्]येतानपराधो न, स्वद्रव्ये संवृतो मुनि ॥७॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यग्रहं कुर्वन् अपराधवान्) परद्रव्य को ग्रहण [करत]ा हुआ अपराधी (एव वध्यते) ही बंध को प्राप्त होता है (स्वद्रव्ये [संवृ]त मुनि अनपराध न वध्येत) अपने द्रव्य में लीन मुनि [अपर]ाध रहित है इसलिये बंध को प्राप्त नहीं होता ॥७॥

(मालिनी) १८७

[अनव]निरन्तमनन्तं वध्यते सापराध. ।
स्पृशति निरपराधो बंधनं नैव जातु ॥
[नि]यतमयमशुद्ध स्वं भजन्सापराधो ।
भवति निरपराध साधुशुद्धात्मसेवी ॥८॥

अन्वयार्थ—(सापराध अनवरत अनंतै) अपराधी निरंतर [अनंत] कर्मरूप पुद्गलों से (वध्यते) बंधता है (निरपराध जातु [बंध]नं न) अपराध रहित कभी भी बंध को नहीं (स्पृशति) स्पर्श [करता] (अयं) यह (अशुद्धं स्वं भजन्) अशुद्ध अपने को भजता (नियतं सापराध एव भवति) नियम से अपराधी होता ही है [(शु]द्धात्मसेवी साधु निरपराध भवति) शुद्ध आत्मा का सेवा [करने] वाला साधु निरपराधी होता है ।

(पृथ्वी) १६०

प्रमादकलित कथ भवति शुद्धभावोऽलम ।
कषायभरगौरवादलमत प्रमादो यत ॥
अत स्वरसनिर्भरे नियमित स्वभावे भवन् ।
मुनि परमशुद्धता व्रजति मुच्यते चाचिरात्।११

अन्वयार्थ—(यत कषायभरगौरवात्) जिस कारण से कषाय के भार से वजनदार (अलमत प्रमाद भवति) आलस्य से प्रमाद होता है (प्रमादकलित अलम) प्रमाद से सहित आलस भाव से (शुद्धभाव कथ स्यात) शुद्ध भाव कैसे हो सकता है (अत स्वरसनिर्भर) इसलिये आत्मिक रस के भार से भरपूर (स्वभावे नियमित भवत्) स्वभाव में निश्चल होता हुआ (मुनि परमशुद्धता व्रजति) मुनि परम शुद्धता को प्राप्त होता है (च अचिरात् मुच्यते) और शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित) १६१

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किलपरद्रव्यसमग्रस्वय
स्वद्रव्येरतिमेति य. सनियत सर्वापराधच्युत' ॥
बन्धध्वसमुपेत्यनित्यमुदित स्वज्योतिरच्छोच्छल
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धोभवन्मुच्यते१२

अन्वयार्थ—(तत) इस कारण (य अशुद्धिविधायि) जो अशुद्ध को करने वाले (समग्र परद्रव्य स्वय) समस्त परद्रव्य को स्वयमेव (त्यक्त्वा) छोड़कर (किल) निश्चय से (स्वद्रव्ये रति

तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥३॥

अन्वयार्थ—(इति अर्थं नाथ शुद्ध स्वात्मा नियत) इस प्रकार यह आत्मा निश्चय से शुद्ध (स्वरसत विशुद्ध) अपने रस से [illegible] है (स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः) अपनी चैतन्य ज्योति से लोक को प्रकाशित करता है, लोक के सब पदार्थ को जानता है। (तथापि अस्य इह असौ) तो भी इस आत्मा के इस लोक में (यत् प्रकृतिभिः बन्धः स्यात्) जो ज्ञानावरण आदि कर्मों से बंध होता है (किल) निश्चय से (सः अज्ञानस्य कोऽपि गहनः महिमा स्फुरति) यह अज्ञान की कोई भी गहन महिमा स्फुरायमान है ॥३॥

(अनुष्टुप) १९६

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ॥४॥

अन्वयार्थ—(अस्य चितः कर्तृत्ववत् भोक्तृत्वं स्वभावः न) इस चैतन्य आत्मा का कर्तापन के समान भोक्तापन स्वभाव नहीं है (स्मृतः अयं अज्ञानात् एव भोक्ता तदभावात् अवेदकः) स्मरण किया गया है कि यह आत्मा अज्ञान से ही भोक्ता है, उस अज्ञान के अभाव से [illegible] नहीं है ॥४॥

(शार्दूलविक्रीडित) १९७

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचि-

इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता

अन्वयार्थ—(अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरत) अज्ञानी ज्ञानावरणादि कर्मों के स्वभाव में लगा हुआ है इसलिए (नित्य वेदक भवेत्) निरंतर भोक्ता है (ज्ञानी तु) ज्ञानी तो (प्रकृतिस्वभावविरत) ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के स्वभाव से अलग है इसलिये वह (जातुचित् वेदक न) कभी भी भोक्ता नहीं है (इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यता) इस प्रकार के नियम का निरूपण करके निपुण पुरुष अज्ञानिता को छोड़ें (शुद्धैकात्ममय महसि अचलितैः ज्ञानिता आसेव्यता) शुद्ध एक आत्म रूप तेज में निश्चल पुरुष ज्ञानीपन को भलीभाँति सेवन करें ॥५॥

(वसंततिलका) १९८

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म—
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावं।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा—
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी कर्म न करोति) ज्ञानी कर्म को नहीं करता (न च वेदयते) और न भोगता है (अयं) यह जीव (केवलं जानाति) सिर्फ कर्म को जानता है (किल) निश्चय से (तत्स्वभावं जानन्) उस स्वभाव को जानता हुआ (करणवेदनयोः अभावात्) करने और भोगने के अभाव से (परं शुद्धस्वभावनियतः) अत्यंत शुद्ध

स्वभाव में स्थित (हि) निश्चय से (स मुक्त एव) वह आत्मा मुक्त होता है ॥६॥

(अनुष्टुप) १९९

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षुताम् ॥७

अन्वयार्थ—(तु ये) और जो (तमसा) अज्ञान अंधकार से (तता) व्याप्त हैं (ते) वे हो (आत्मानं कर्तारम् पश्यन्ति) आत्मा को कर्ता मानते हैं (सामान्यजनवत्) साधारण मनुष्यों के समान (तेषां मुमुक्षुतां) उन मुमुक्षुओं के। (अपि मोक्ष न) भी मोक्ष नहीं हो सकता ॥७॥

(अनुष्टुप) २००

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्ध परद्रव्यात्मतत्त्वयो ।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुत. ॥८॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यात्मतत्त्वयो) परद्रव्य और आत्म द्रव्य में (सर्वः अपि सम्बन्ध) कोई भी सबंध (नास्ति) नहीं है (कर्तृकर्मत्वसंबंधाभावे) कर्ता और कर्म रूप संबंध के अभाव में (तत्कर्तृता कुत स्यात्) वह कर्म का कर्तापन कैसे हो सकता है ॥८॥

(वसंततिलका) २०१

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्द्धं—
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्ध ।

तत्कर्तृकर्म घटनाऽस्ति न वस्तु भेदे—
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जना स्वतत्त्व ॥६॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (एकस्य वस्तुन) किसी एक वस्तु का (अन्यतरेण सार्द्धं) दूसरी वस्तु के साथ (यत सकल अपि) जिस कारण से सभी (सम्बंध निषिद्ध एव) सम्बंध निषिद्ध ही है (तत्) इस कारण (वस्तुभेदेकर्तृ कर्मघटना) वस्तु के भेद में कर्ता और कर्म का व्यवहार (नास्ति) नहीं बन सकता इसलिये (मुनय जनाश्च) मुनिजन और साधारण जनता (स्वतत्त्व) निज स्वरूप को (अकर्तृ) कर्ता रहित (पश्यन्तु) देखें ॥६॥

वसन्ततिलका २०७

ये तु स्वभावनियम कलयन्ति नेय—
मज्ञानमग्नमहसो बत ते वराका ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म—
कर्ता स्वय भवति चेतन एव नान्य ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यतु) और जो (इयम स्वभावनियमं न कलयन्ति) इस स्वभाव के नियम को नहीं जानते हैं (बत) खेद है कि (अज्ञानमग्नमहस) अज्ञान में लीन है तेज जिनका ऐसे (ते वराका कर्म कुर्वन्ति) वे बिचारे कर्म को करते हैं (तत एव) इसलिये ही (चेतन) आत्मा (हि) निश्चय से (भावकर्मणा स्वय एव भवति) भाव कर्मों का कर्ता स्वयं ही होता है (अन्य न) दूसरा नहीं ॥ १० ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २०३

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो
रज्ञाया प्रकृते स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृति
नैकस्या प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गल

अन्वयार्थ—(कार्यत्वात्) कार्य होने से (कर्म) कर्म (अकृतं) बिना किया (न) नहीं हो सकता (च) और (तत् जीवप्रकृत्यो) वह कर्म जीव और प्रकृति (द्वयो) दोनों का किया हुआ (न भवेत्) नहीं हो सकता, यदि प्रकृति का किया माना जावे तो (अज्ञाया प्रकृते स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्) अचेतन प्रकृति के अपने कार्य के फल का भोगने का प्रसंग हो जाएगा (एकस्या प्रकृते) एक प्रकृति के (अचित्त्वलसनात्) अचेतन होने से (कृति न) कर्मरूप कार्य नहीं हो सकता (ततः अस्य कर्ता) इस कारण इस कर्म का कर्ता (जीव) जीव है (तत्कर्म) यह कर्म (जीवस्य एव) जीव का ही है क्योंकि (चिदनुगं) कर्म चेतन के साथ अन्वयरूप है (यत्) जिस कारण से (पुद्गल) पुद्गल (ज्ञाता न) जानने वाला नहीं है इसलिए भाव कर्म नहीं है ॥ १३ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकै क्षिप्त्वात्मन कर्तृतां
कर्तात्मैष कथंचिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुति कोपिता
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधिया बोधस्य संशुद्धये ।
स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिस्तूयते १२

अन्वयार्थ—(आत्मन) आत्मा के (हतकै) घातक (कर्मण) कर्म को ही (कर्तृ) कर्ता (प्रवितर्क्य) मानकर (कर्तृता) आत्मा के कर्तापन को (क्षिप्त्वा) दूरकर (एष आत्मा) यह आत्मा (कथचित्) कथंचित् (कर्ता) कर्ता है (इति) ऐसा (अचलिता) निश्चल श्रुति) जिनवाणी को (कैश्चित्) किन्हीं ने (कोपिता) क्रुद्ध कराया (तथा) उन (उद्धतमोहमुद्रितधिया) महान मोह से मन्द बुद्धि वालों के (बोधस्य) बोध की (संशुद्धये) अच्छी तरह शुद्ध करने के लिये (स्याद्वादप्रतिबंधलब्धविजया) स्याद्वाद के प्रति [illegible] जिस को प्राप्त ऐसी (वस्तुस्थिति स्तूयते) वस्तु की मर्या [illegible] जाता है ॥१२

(शार्दूलविक्रीडित) [illegible]

मा कर्तारममी स्पृशन्तु पुरुष सांख्या इवाप्यार्हता
कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादध
उर्द्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं ।
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम्॥१३

अन्वयार्थ—(अमी आर्हता) वे जैन लोग (सांख्या इव) सांख्य मतवालों के समान (पुरुष कर्तारं) आत्मा को कर्ता (मा स्पृशन्तु) मत मानें (भेदावबोधात्) भेद ज्ञान के (अधः) पहले (तं) उस आत्मा को (सदा) हमेशा (किल) निश्चय से (कर्तारं कलयन्तु) कर्ता मानें (उर्द्ध्वं तु) भेद विज्ञान के पश्चात तो (उद्धतबोधधामनियतं) उत्कृष्ट ज्ञान रूप मन्दिर में निश्चित (एनं) इस आत्मा को (च्युतकर्तृभावं) कर्ता पन से रहित (अचलं) निश्चल (एकं) अद्वितीय (परं) श्रेष्ठ (ज्ञातारं) ज्ञाता (स्वयं) स्वयमेव (प्रत्यक्षं पश्यन्तु) प्रत्यक्ष रूप से देखें ॥ १२ ॥

(मालिनी) ० ६

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं ।
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम् ॥
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः ।
स्वयमयमभिषिंचश्चिच्चमत्कार एव ॥१४॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (इह) एक बौद्ध (इह) इस लोक में (इदं आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा) इस आत्म तत्त्व को क्षणिक कल्पना करके (कर्तृभोक्त्रोः विभेदम्) कर्ता और भोक्ता के भेद को (निजमनसि विधत्ते) अपने मन में धारण करता है (तस्य नित्यामृतौघैः) उसके नित्यरूप अमृत समुदाय से (अभिषिंचन्) मानता हुआ (विमोहं) अज्ञानरूप (अयं) यह (चिच्चमत्कारः) चैतन्य का चमत्कार (स्वयमेव) स्वयमेव (अपहरति) दूर करता है ॥ १४ ॥

(अनुष्टुप) ०७

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात् ।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥

अन्वयार्थ—(वृत्त्यंशभेदतः) ज्ञान समयवर्ती अवस्था के प्रथक् भेद से (अत्यन्तं) अत्यन्त रूप से (वृत्तिमन्नाशकल्पनात्) वृत्तिमान पर्याय का कल्पना से (अन्यः करोति) दूसरा कर्ता है (अन्यः भुंक्ते) दूसरा कोई भोक्ता है (इति एकान्तः मा चकास्तु) ऐसा एकान्तवाद नहीं ॥ ५ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २०८

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतैः
आत्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः

अन्वयार्थ—(आत्मानं परिशुद्धं ईप्सुभिः) आत्मा को विशुद्ध चाहने वाले (पृथुकैः) बाल (कालोपाधिबलात्) काल रूप उपाधि के बल से (अतिव्याप्तिं) अतिव्याप्ति को (प्रपद्य) प्राप्तकर (तत्रापि) उसमें भी (अधिकां) अधिक (अशुद्धिम्) अशुद्धि को (मत्वा) मानकर (परैः चैतन्यं) दूसरे आत्मा को (क्षणिकं प्रकल्प्य) क्षणिक रूप कल्पना कर (शुद्धर्जुसूत्रे रतैः) शुद्ध ऋजुसूत्रनय में प्रीति (अन्धकैः) अन्धों ने (निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः) सूत्ररहित मोतियों को देखने वाले (हारवत्) हार के समान (एषः) इस (आत्मा व्युज्झितः अहो) आत्मा को छोड़ दिया गया है ॥ २६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २०९

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिन्त्यताम्।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचित्
चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः॥

अन्वयार्थ—(कर्तुः) कर्ता के (च) और (वेदयितुः) भोक्ता के (युक्तिवशतः) युक्ति के वश से (भेदः) भेद (वा) अथवा

व्यावहारिकदृशैव केवलं—
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तुचिन्त्यते—
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥१८॥

अन्वयार्थ—(व्यावहारिकदृशा) व्यवहार की दृष्टि से (एव) ही (केवलं) सिर्फ (कर्तृ च) कर्ता और (कर्म) कर्म (विभिन्नं) बिल्कुल भिन्न (इष्यते) मालूम होता है (यदि) अगर (निश्चयेन) निश्चय नय से (वस्तु) वस्तु का (चिन्त्यते) विचार किया जावे (तर्हि) तो (कर्तृ) कर्ता (च) और (कर्म) कर्म (सदा) हमेशा (एकं इष्यते) एक ही मालूम होते हैं ॥१८॥

(नर्दटक) २११

ननु परिणाम एव किल कर्मविनिश्चयतः ।
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ॥

न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया ।
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृत्वादेव तत ।१८

अन्वयार्थ—(वस्तुनिश्चयत) कर्म के विशेष निश्चय से (एव) ही (स परिणामी) वह पदार्थ परिणाम वाला (भवति) होता है (ननु अपरस्य) यह निश्चय भी है कि दूसरे (परिणामिन) परिणाम वाले को (स) वह परिणाम (न भवति) नहीं हो सकता (इह कर्म कर्तृ शून्य न भवति) इस लोक में कर्म कर्ता के बिना नहीं होता (इह) यहां (एकतया) एकांत रूप से (स्थिति) वस्तु की स्थिति (न भवति) नहीं होती (तत वस्तुन) इसलिये वस्तु के (कर्तृत्वात) कर्ता होने से (तद्भवतु) वह कर्म भी होना चाहिये ॥ १८ ॥

(पृथ्वी)

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं ।
तथाप्यपरवस्तुनोविशति नान्यवस्त्वन्तरं ॥
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते ।
स्वभावचलनाकुलः किमिहमोहितः क्लिश्यते ।१९।

अन्वयार्थ—(यद्यपि) यद्यपि वस्तु (स्वयं स्फुटदनन्तशक्ति) स्वयं प्रगट अनन्त शक्तिवान है (तथापि अपरवस्तु) तो भी अन्य वस्तु (अपरवस्तुन) दूसरा वस्तु के (अन्तरं न विशति) मध्य में प्रवेश नहीं करती (बहिर्लुठति) किन्तु बाहर ही रहा करती है (यत सकलमेव) क्योंकि समस्त ही (वस्तु) वस्तु (स्वभावनियत) स्वभाव में निश्चित (इष्यते) माना गया है (इह मोहित) यहां मोह को प्राप्त हुआ (स्वभावचलनाकुल) स्वभाव का च— हुआ ([illegible]) क्यों दुःखी होता है ॥

(रथोद्धता) २१३

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो —
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः—
किं करोतिहि वहिर्लुठन्नपि ॥२०॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (यत् एक) जिस कारण से एक वस्तु (अन्य वस्तु न) दूसरी वस्तु नहीं है (तेन) इस कारण से (तत् वस्तु) वह वस्तु (खलु) निश्चय से (वस्तु) वस्तु है (अयं निश्चय) यह निश्चय है (अपर) दूसरा (कः) कौन (बहिर्लुठन्नपि) बाहिर लोटता हुआ भी (अपरस्य) दूसरे का (हि) निश्चय से (किं करोति) क्या करता है अर्थात् कुछ भी नहीं करता ॥२०॥

(रथोद्धता) २१४

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः—
किंचनापि परिणामिनः स्वयं ।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं—
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(यत्तु) जो (वस्तु स्वयं) वस्तु खुद (परिणामिनः) परिणमनशील (अन्यवस्तुनः) दूसरी वस्तु का (किंचनापि कुरुते) कुछ भी करती है (तत्) वह (व्यावहारिकदृशा एव) व्यवहार की दृष्टि से ही (मतं) माना गया है (निश्चयात् तु) निश्चय से तो (इह) इस लोक में (अन्यत् किमपि नास्ति) दूसरा कुछ भी नहीं है ॥२१॥

(शार्दूलविक्रीडित) २१५

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वंसमुत्पश्यतो ।
नैकद्रव्यगतगत चकास्तिकिमपि द्रव्यांतर जातुचित्
ज्ञान ज्ञेयमवैति यत्तु तदय शुद्धस्वभावोदय ।
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवते जना

अन्वयार्थ – (शुद्धं द्रव्यनिरूपणार्पितमत) शुद्ध द्रव्य के निरूपण में लगा दिया है बुद्धि को जिसने और (तत्त्वं) तत्त्व अर्थात् वस्तु स्वरूप को (समुत्पश्यत) भला भांति देखने वाले के (एकद्रव्यगत) एक द्रव्य में प्राप्त (किमपि) कोई भी (द्रव्यान्तरं) दूसरा द्रव्य (जातुचित् न चकास्ति) कभी भी शोभा नहीं पाता (यत्तु) और जो (ज्ञान) ज्ञान (ज्ञेय)ज्ञेय—पदार्थ को (अवैति) जानता है (तत्) वह (अय) यह (शुद्धस्वभावोदय) शुद्ध द्रव्य के स्वभाव का उदय है इसलिए (द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधिय) दूसरे द्रव्य के ग्रहण करने से आकुल बुद्धि वाले (जना) लोग (तत्वात) वस्तु रूप से (किं च्यवन्ते) क्यों दूर होते हैं ॥ ॥

(मंदाक्रान्ता) २१६

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात् किं स्वभावस्य शेष—
मन्यद्द्रव्य भवति यदि वा तस्यकिंस्यात्स्वभाव ॥
ज्योत्स्नारूपस्नपयतिभुव नैव तस्यास्तिभूमि—
र्ज्ञान ज्ञेय कलयतिसदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२३॥

अन्वयार्थः—(शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्) शुद्ध द्रव्य के निजरस रूप होने से (शेष) बाकी (अन्यद्रव्य) दूसरा द्रव्य (स्वभावस्य किं भवति) दूसरे के स्वभाव का क्या कर सकता है अर्थात् कुछ भी नहीं (यदि वा) अथवा (तस्य स्वभावः किं स्यात्) उस अन्य द्रव्य का स्वभाव क्या हो सकता है अर्थात् कुछ भी नहीं (ज्योत्स्नारूप भुवं स्नपयति) चांदनी का रूप पृथ्वी को स्वच्छ करता है (तस्य) उस चांदनी का रूप (भूमि नैवास्ति) पृथ्वी रूप नहीं होता (ज्ञान) ज्ञान (ज्ञेयं) ज्ञेय अर्थात् पदार्थ को (सदा कलयति) हमेशा जानता है (अस्य) इस ज्ञान के (ज्ञेय) ज्ञेय पदार्थ (नेवास्ति) नहीं होता ॥२३॥

(मन्दाक्रान्ता) २१७

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत् ।
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यं ॥
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं ।
भावाभावौ भवति तिरयन्येनपूर्णस्वभावः॥२४॥

अन्वयार्थः—(रागद्वेषद्वय) राग और द्वेष ये दोनों (तावदुदयते) तभी तक उदयमान रहते हैं (यावत् ज्ञानज्ञानं न भवति) जब तक ज्ञान ज्ञानरूप नहीं होता (पुनः बोध्यं बोध्यतां न याति) और ज्ञेय अर्थात् पदार्थ ज्ञेयता को प्राप्त नहीं होता (न्यक्कृताज्ञानभावं) इसलिये दूर कर दिया है अज्ञान भाव को जिसने ऐसा (इदं ज्ञानं ज्ञानं भवतु) यह ज्ञान ज्ञान रूप हो (येन भावाभावौ तिरयत् पूर्णस्वभावः भवति) जिससे भाव और अभाव इन दोनों को दूर करता हुआ पूर्ण स्वभाव रूप हो।

(मंदाक्रान्ता) २१८

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावा
त्तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित् ॥
सम्यग्दृष्टि क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ ।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहज येन पूर्णाचलार्चि ॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से (इह) इस आत्मा में (ज्ञान अज्ञानभावात्) ज्ञान, अज्ञान भाव से (रागद्वेषौ भवति) राग और द्वेष रूप हो जाता है (प्रणिहितदृशा दृश्यमानौ) सावधान दृष्टि से देखने वाले (तौ किंचित् वस्तुत्व न) वे राग और द्वेष कुछ भी वस्तुरूप नहीं हैं (तत सम्यग्दृष्टि तत्त्वदृष्ट्या) इसलिये सम्यग्दृष्टि तत्त्व दृष्टि से (स्फुटन्तौ) प्रतिभासमान राग और द्वेष को (क्षपयतु) दूर करें (येन सहज पूर्णाचलार्चि) जिससे स्वाभाविक परिपूर्ण निश्चल प्रकाशवान (ज्ञानज्योतिर्ज्वलति) ज्ञान रूपी ज्योति प्रकाशमान रहे ॥ २५ ॥

(शालिनी) २१६

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या —
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति —
व्यक्ताऽत्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ।२६।

अन्वयार्थ—(तत्त्वदृष्ट्या) यथार्थ दृष्टि से (रागद्वेषोत्पादक) राग और द्वेष को उत्पन्न करने वाला (अन्यत् किंचन अपि) दूसरा

दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विदन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवना ज्ञानस्य सचेतन

अन्वयार्थ—(रागद्वेषविभावमुक्तमहस) रागद्वेष रूप विभ मे शून्य तेज वाले (नित्य स्वभावस्पृश) निरंतर स्वभाव को छू स करने वाले (पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला) भूत भविष्यत के समस्त कर्मो से शून्य और (तदात्वोदयात्) वर्तमान के कर्मोदय से (भिन्ना) पृथक् (दूरारूढचरित्रवैभवबलात्) अतिशय रूप से धारण किये गये चारित्र रूप ऐश्वर्य के बल से (चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं) चमकीली चेतना रूपी ज्वालाओं वाली (स्वरसाभिषिक्तभुवना) अपने रस से सींच दिया है लोक को जिसने ऐसी (ज्ञानस्य सचेतनांविंदति) ज्ञान की समीचीन चेतना को प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥

(उपजाति) २२४

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैवनित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्ध
अज्ञानसञ्चेतनयातुधावन् बोधस्यशुद्धिंनिरुणद्धिबंध

अन्वयार्थ—(ज्ञानस्य सञ्चेतनया) ज्ञान की सम्यक् चेतना (एव) ही (ज्ञानं अतीवशुद्धं) ज्ञान अतिशय रूप से शुद्ध (नित्यं प्रकाशते) निरंतर प्रकाशित होता है (अज्ञानसंचेतनयातु) अज्ञान चेतना से तो (धावन्) दौड़ता हुआ (बंध) बंध (बोधस्य) ज्ञान की (शुद्धिं निरुणद्धि) शुद्धि को रोक देता है ॥३१॥

(आर्या) २२५

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयंमनोवचनकायैः
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३२॥

दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विदन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवना ज्ञानस्य सञ्चेतना

अन्वयार्थ—(रागद्वेषविभावमुक्तमहस) रागद्वेष रूप विभाव से शून्य तेज वाले (नित्यं स्वभावस्पृश) निरंतर स्वभाव का ही स्पर्श करने वाले (पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला) भूत भविष्यत के समस्त कर्मों से शून्य और (तदात्वोदयात्) वर्तमान के कर्मोदय से (भिन्ना) पृथक् (दूरारूढचारित्रवैभवबलात्) अतिशय रूप से धारण किये गये चारित्र रूप ऐश्वर्य के बल से (चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं) चमकते चैतन्य रूपी ज्वालाओं वाली (स्वरसाभिषिक्तभुवना) अपने रस से सींच दिया है लोक को जिसने ऐसी (ज्ञानस्य सञ्चेतना विदन्ति) ज्ञान की सम्यक् चेतना को प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥

(उपजाति) २२४

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्धं।
अज्ञानसञ्चेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः

अन्वयार्थ—(ज्ञानस्य सञ्चेतनया) ज्ञान की सम्यक् चेतना से (एव) ही (ज्ञानं अतीवशुद्धं) ज्ञान अतिशय रूप से शुद्ध (नित्यं प्रकाशते) निरंतर प्रकाशित होता है (अज्ञानसञ्चेतनया तु) अज्ञान चेतना से तो (धावन्) दौड़ता हुआ (बन्धः) बंध (बोधस्य) ज्ञान की (शुद्धिं निरुणद्धि) शुद्धि को रोक देता है ॥३१॥

(आर्या) २२५

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३२॥

अन्वयार्थ—(त्रिकालविषय) तीन काल सम्बन्धी (सर्व कर्म) सर्व को (मनोवचनकायैः) मन वचन काय और (कृत कारितानुमतैः) कृत कारित अनुमोदना से (परिहृत्य) दूर कर मैं (परम) अति उत्कृष्ट (नैष्कर्म्यं) कर्म शून्यता का (अवलम्बे) अवलम्बन करता हूँ ॥३२॥

(आर्या) २२६

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मनावर्ते

अन्वयार्थ—(मोहात्) मोह से अर्थात् अज्ञान से (अहं) मैंने (यत्कर्म) जो कर्म (अकार्षम्) किये (तत्समस्त अपि) उन सम्पूर्ण कर्मों का (प्रतिक्रम्य) प्रतिक्रमण कर (निष्कर्मणि) कर्मों से शून्य (चैतन्यात्मनि) चैतन्य रूप (आत्मनि) आत्मा में (आत्मना) अपने द्वारा (नित्य) निरन्तर (वर्ते) प्रवृत्ति करता हूँ ॥ ३३ ॥

(आर्या) २२७

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्मसकलमालोच्य
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मनावर्ते

अन्वयार्थ—(मोहविलासविजृम्भितम्) मोह के विलास से वृद्धि को प्राप्त हुए (उदयत्) उदय में आ रहे (इदं सकलं कर्म आलोच्य) इन सम्पूर्ण कर्मों की आलोचना कर (निष्कर्मणि) कर्मों से शून्य (चैतन्यात्मनि) चैतन्य स्वरूप (आत्मनि) आत्मा में (आत्मना) अपने द्वारा (नित्य वर्ते) निरन्तर प्रवृत्ति करता हूँ ॥ ३४ ॥

(आर्या) २२८

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्त निरस्तसंमोह ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणिनित्यमात्मनावर्ते

अन्वयार्थ—(भविष्यत्) आगामी (समस्त कर्म) सम्पूर्ण कर्म को (प्रत्याख्याय) छोड़कर (निरस्तसमोह) मोह से रहित (निष्कर्मणि चैतन्यात्मनि) कर्मों से शून्य चैतन्य स्वरूप (आत्मनि) आत्मा में (आत्मना नित्य वर्ते) अपने द्वारा निरंतर प्रवृत्ति करता हूँ ॥ ५॥

(उपजाति) २२९

समस्तमित्येवमपास्यकर्म—
त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी ।
विलीनमोहो रहितं विकारै—
श्चिन्मात्रमात्मानमथाऽवलम्बे ॥३६॥

अन्वयार्थ—(इत्येवं) इस प्रकार (समस्तं त्रैकालिकं कर्म अपास्य) सम्पूर्ण तीन काल सम्बन्धी कर्मों को छोड़कर (शुद्ध नयावलम्बी) शुद्ध नय का अवलम्बन करने वाला (विलीनमोह विकारैः) मोह से शून्य कर्म कृत विकार भावों से (रहितं) रहित (चिन्मात्र आत्मानं अथावलम्बे) चैतन्य स्वरूप आत्मा का अवलम्बन करता हूँ ॥३६॥

(आर्या) २३०

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानं ॥३७॥

अन्वयार्थ—(कर्मविषतरुफलानि) कर्म रूप विष वृक्ष के फल (मम भुक्ति अन्तरेणैव) मेरे भोग के बिना ही (विगलन्तु) गिर जावें (अचलं चैतन्यात्मानं) निश्चल चैतन्य स्वरूप (आत्मानं अहं सञ्चेतये) आत्मा का मैं अनुभव करता हूँ ॥३७॥

(वसन्ततिलका) ४३१

निःशेषकर्मफलसन्यसनात्ममैवं,
सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्वं,
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥३८॥

अन्वयार्थ—(निःशेषकर्मफलसन्यसनात्) समस्त कर्मों के फल का त्याग होने से (सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः) सभी अन्य क्रियाओं में प्रवर्तन रूप से रहित वृत्ति वाले (चैतन्यलक्ष्म आत्मतत्वं भृशं भजतः) चैतन्य स्वरूप आत्म तत्व को अतिशय रूप से अनुभव करने वाले (अचलस्य) निश्चल (मम) मेरे (इयं) यह (कालावली अनन्ता वहतु) काल की आवली अनन्त काल तक प्रवाह रूप से बहे ॥३८॥

(वसंततिलका) ४३२

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां,
भुक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः ।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं,
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥३९॥

अन्वयार्थ—(य पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां) जो पूर्व भाव में किये गये कर्म रूप विष वृक्ष के (फलानि) फलों को (स्वत न भुंक्ते) निज बुद्धि से नहीं भोगता (खलु) निश्चय से (स तृप्त एव) वह निज स्वरूप में मगन ही है (आपातकालरमणीयं) वर्तमान काल में रम्य व सुन्दर (उदर्करम्यं निष्कर्मशर्ममयम्) भविष्य काल में मनोहर कर्मों से रहित सुख रूप (दशान्तरं एति) अवस्थान्तर को प्राप्त करता है ॥३६॥

(स्रग्धरा) २३

अत्यन्तं भावयित्वा विरतमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसञ्चेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु

अन्वयार्थ—(कर्मण तत्फलाच्च) कर्म से और कर्मों के फल से (विरतं) विरक्ति को (अविरतं) निरन्तर (अत्यन्तं भावयित्वा) अतिशय रूप से भावना कर (अखिलाज्ञानसञ्चेतनायाः) समस्त अज्ञान चेतना के (प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा) विनाश को भली भाँति नचा के (स्वरसपरिगतं) निज रस में प्राप्त (स्वभावं) स्वभाव को (पूर्णं कृत्वा) पूर्ण करके (स्वां) अपनी (ज्ञान सञ्चेतनां) ज्ञान रूपी चेतना को (सानन्दं) आनन्द सहित (नाटयन्तः) नचाते हुए (इतः) इस तरह से आगे (सर्वकालं) सदा (प्रशमरसं) प्रशम रूप रस को (पिबन्तु) पियें ॥४॥

(वंशस्थ) ३४

इत पदार्थप्रथनावगुण्ठना—
द्विनाकृतेरेकमनाकुल ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चया—
द्विवेचित ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥४१॥

अन्वयार्थ—(इत) यहां से आगे (पदार्थप्रथनावगुण्ठनात्) पदार्थों के प्रसार का भय जान संबंध से (कृतेर्विना) कर्तृत्वादि रूप क्रिया के बिना (अनाकुल) निराकुल (समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चयात्) समस्त पदार्थों से भिन्नता का निश्चय ज्ञान से (विवेचित) प्रकट किया गया (एक ज्ञान) एक ज्ञान (इह) आत्मा में (ज्वलन्) चमकता हुआ (अवतिष्ठते) स्थित रहता है ॥४१॥

(शार्दूलविक्रीडित) ३५

अन्येभ्योव्यतिरिक्तमात्मनियतबिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमल ज्ञानं तथावस्थितम्
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुर
शुद्धज्ञानघनो यथास्यमहिमानित्योदितस्तिष्ठति

अन्वयार्थ—(अन्येभ्य व्यतिरिक्त) अन्य पदार्थों से अत्यन्त भिन्न (आत्मनियतं) आत्मा में निश्चित (वस्तुताम्) वस्तुता को अर्थात् सामान्य विशेषात्मकता को (पृथग्बिभ्रत्) भिन्न रूप से धारण करता हुआ (आदानोज्झनशून्यं) ग्रहण और त्याग से रहित (अमल) निर्मल (एतत् ज्ञान) यह ज्ञान (तथावस्थितम्) उसी

प्रकार से अवस्थित है (यथा) जिस प्रकार से (अस्य) इसकी (मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुर) मध्य आदि और अन्त रूप विभाग से शून्य स्वाभाविक विशाल प्रभा से प्रकाशमान (शुद्धज्ञानघन) शुद्ध ज्ञान घन स्वरूप (नित्योदित) निरन्तर प्रकाशमान (महिमा तिष्ठति) महिमा स्थिर रहता है ॥४२॥

(उपजाति) २३६

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्
यदात्मन संहृतसर्वशक्ते पूर्णस्य सधारणमात्मनीह

अन्वयार्थ—(यत् उन्मोच्य) जो छोड़ने योग्य था (तत् अशेषतः उन्मुक्तं) वह परिपूर्ण रूप से छोड़ा गया (तथा) वैसे ही (यत् आदेय) जो ग्रहण करने योग्य था (तत् अशेषतः आत्तं) वह समग्र रूप से ग्रहण किया गया (संहृतसर्वशक्ते) एकत्रित की हुई हैं समस्त शक्तियें जिसने ऐसा (पूर्णस्य आत्मनः) परिपूर्ण आत्मा का (इह आत्मनि संधारणं भवति) इस आत्मा में धारण करना होता है ॥४३॥

(अनुष्टुप) २३७

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम् ।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शक्यते ॥४४॥

अन्वयार्थ—(एवं परद्रव्यात्) इस प्रकार पर द्रव्यों से (व्यतिरिक्तं) सर्वथा पृथक् (ज्ञानं अवस्थितम्) ज्ञान स्थित हुआ (तत् आहारकं) वह ज्ञान कर्म और नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करने वाला (कथं स्यात्) कैसे हो सकता है (येन अस्य देहः शक्यते) जिससे इस ज्ञान के शरीर की शंका की जा सके ॥४४॥

(अनुष्टुप) २४८

एव ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्नलिंग मोक्षकारणम् ॥४५॥

अन्वयार्थ—(एवं शुद्धस्य ज्ञानस्य देहः एव न विद्यते) इस तरह शुद्ध ज्ञान के शरीर ही नहीं है (ततः ज्ञातुः देहमयं लिंग मोक्षकारणं न भवति) इस कारण ज्ञाता अर्थात् आत्मा का शरीर रूप लिंग मोक्ष का कारण नहीं हो सकता ॥४५॥

(अनुष्टुप) २४९

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्वमात्मनः ।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा॥४६

अन्वयार्थ—(आत्मनः तत्त्वं दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा) आत्मा का स्वरूप दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों का एक रूप है इसलिए (मुमुक्षुणा) मोक्ष को चाहने वाले (सदा) हमेशा (एक एव) एक ही (मोक्षमार्गः सेव्यः) मोक्षमार्ग का सेवन करे ॥४६॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५०

एको मोक्षपथो य एषनियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्यात्मक
स्तत्रैवस्थितिमेति यस्तमनिशध्यायेच्चत चेतति
तस्मिन्नेवनिरतरविहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्य समयस्यसारमचिरान्नित्योदय विन्दति

अन्वयार्थ—(यः) जो (एषः) यह (दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकः) दर्शन ज्ञान और चारित्र रूप (एकः मोक्षपथः) एक मोक्ष का मार्ग (नियत

श्रित) निश्चित है (तत्रैव) उसी में ही (यः स्थिति एति) जो स्थिति को प्राप्त करता है (अनिशं तं ध्यायेत्) निरंतर उसका ध्यान करता है (च) और (तं) उसी का (चेतति) चिंतन करता है (द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्) अन्य द्रव्यों से स्पर्श नहीं करते हुए (तस्मिन्नेव) उसी में ही निरंतर) निरंतर (विहरति) विहार करता है (सः नित्योदय समयस्यसार) वह निरंतर उदयमान आत्मा के सार को (अचिरात्) शीघ्र ही (अवश्य विन्दति) अवश्य प्राप्त करता है ॥४०॥

(शार्दूलविक्रीडित) ४१

येत्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते

अन्वयार्थ—(ये) जो पुरुष (एनं) इस मोक्षमार्ग को (तु) तो (परिहृत्य) छोड़ कर (संवृतिपथप्रस्थापितेन) समीचीन व्यवहार मार्ग में स्थापित हुए (आत्मना) अपने द्वारा (द्रव्यमये लिंगे ममतां वहन्ति) द्रव्यरूप वेष में ममता का धारण करते हैं (ते) वे (तत्त्वावबोधच्युताः) तत्त्वज्ञान से शून्य होते हुए (नित्योद्योतं अखण्डं) निरंतर प्रकाशमान अखण्ड (एकं अतुलालोकम् स्वभावप्रभाप्राग्भारं) एक अनुपम प्रकाशवान स्वभाव की कान्ति से अत्यन्त अभय (अमलं समयस्यसारं अद्यापि न पश्यन्ति) निर्मल आत्मा के सार को आज तक भी नहीं देखते हैं।

(वियोगिनी) ४२

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तंदुलम्

अन्वयार्थ—(व्यवहारविमूढदृष्टय) व्यवहार में विमुग्ध दृष्टि वाले (जना) मनुष्य (परमार्थं) परमार्थ को (नो कलयंति) नहीं जानते हैं (इह) इस लोक में (तुषबोधविमुग्धबुद्धय) तुष में ही तंदुल के ज्ञान से विमुग्ध बुद्धि वाले (तुषं) तुष को (तंदुलं कलयंति) तंदुल जानते हैं (तंदुलं) तंदुल को (न कलयंति) तंदुल नहीं जानते ॥४९॥

(स्वागता) २४२

द्रव्यलिंगममकारमीलितैर्दृश्यते समयसार एव न
द्रव्यलिंगमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वत

अन्वयार्थ—(द्रव्यलिंगममकारमीलितैः) द्रव्यलिंग में ममत्व बुद्धि से अंध (समयसार एव न दृश्यते) आत्मा के सार को ही नहीं देखते (इह) इस लोक में (यत् द्रव्यलिंगं) जो द्रव्यलिंग है (तत्) वह तो (अन्यत एव भवति) अन्य द्रव्य से ही होता है और (इदं) यह (एकं ज्ञानं) एक ज्ञान (हि) निश्चय कर (स्वत एव भवति) आत्मा से ही होता है ॥५०॥

(मालिनी) २४८

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै ।
रयमिह परमार्थश्चिन्त्यतां नित्यमेक ॥
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा ।
न्न खलु समयसारा दुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥

अन्वयार्थ—(अनल्पै) बहुत (अतिजल्पै) ज्यादा बकवाद और (दुर्विकल्पै) दुर्विकल्प (अलं अलं) व्यर्थ है व्यर्थ है (इह) इस समयसार ग्रंथ में (अयं एक) यह एक (परमार्थ) परमार्थ को (नित्य

चित्स्यता) निरंतर चिन्तन करना चाहिए (स्वरसविसरपूर्णज्ञान विस्फूर्तिमात्रात्) निज रस से फैला रूप और पूर्णज्ञान से स्फुरायमान (समयसारात्) समयसार से (उत्तर) अधिक (खलु) और (किंचित् नास्ति) कुछ भी नहीं है ॥५१॥

(अनुष्टुप) २४५

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम् ।
विज्ञानघनमानंदमयमध्यक्षतां नयत् ॥५२॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह समय प्राभृतशास्त्र (अक्षयं) अविनाशी (एकं) एक असाधारण (जगच्चक्षु) जगत का नेत्र रूप (विज्ञानघन) विज्ञान घन (आनन्दमय) आनन्दमय समयसार को (अध्यक्षतां नयत्) प्रत्यक्ष कराता हुआ (पूर्णतां याति) पूर्णता को प्राप्त होता है ॥५२॥

(अनुष्टुप) २४६

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितं ।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥५३॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (इदं आत्मनः) इस आत्मा का (तत्त्वं) स्वरूप (ज्ञानमात्रं) ज्ञानप्रमाण (अवस्थितं) निश्चित हुआ जो (अखण्डं) अखण्ड है (एकं) एक है (अचलं) निश्चल है (स्वसंवेद्यं) स्वसंवेद्य है और (अबाधितं) बाधा कर रहित है ॥५३॥

इति सर्व विशुद्धि अधिकार

॥ अथ परिशिष्टाधिकार प्रारभ्यते ॥

(अनुष्टुप) २४७

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥१॥

अन्वयार्थ—(अत्र) इस अधिकार में (स्याद्वादशुद्ध्यर्थं) स्याद्वाद की शुद्धि के लिए (वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति) वस्तु स्वरूप की व्यवस्था का (च) और (उपायोपेयभाव) ज्ञान में उपाय भाव और उपेय भाव का (मनागपि भूयः) थोड़ा सा भी अतिशय रूप से (चिन्त्यते) विचार करें ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडित) २४८

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति ॥
यत्तत्तदिह स्वरूपतइति स्याद्वादिनस्तत्पुनः ।
दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥

अन्वयार्थ—(पशोः) अज्ञानी अर्थात् एकान्तवादी का (यत् ज्ञानं) जो ज्ञान (बाह्यार्थैः) परभूत पदार्थों से (परिपीत) पिया गया है परिपूर्ण रूप से (उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्) छोड़ा हुआ अपनी निजात्मा से शून्य होता हुआ (परितः) सब तरफ से (पररूपएव) पर रूप में ही (विश्रान्त) स्थिर को प्राप्त हुआ (तत्) वह ज्ञान (सीदति) नष्ट हो जाता है (स्याद्वादिनः) लेकिन स्याद्वादी का (तत्) यह ज्ञान (इह) इस आत्मा में (स्वरूपतः) स्वरूप से है (तत्) यह ज्ञान (तत्) निज रूप है (इति) इस प्रकार (पुनः तत्) और वह ज्ञान (दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः) अतिशय रूप से प्रगट घनस्वभाव के समूह से (पूर्णं) परिपूर्ण रूप से (समुन्मज्जति) शोभित रहता है ॥ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २४९

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छ

यत्तत्तत्पररूपतो न तदितिस्याद्वाददर्शीपुन—
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्यस्वतत्वं स्पृशेत्

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी एकान्तवादी (विश्व) समस्त पदार्थों को (ज्ञान) ज्ञान रूप है (ज्ञात) ऐसा (प्रतर्क्य) तर्कणाकर (सकल) सम्पूर्ण जगत को (स्वतत्वाशया) निजतत्व की आशा से (दृष्ट्वा) देखकर (विश्वमय) समस्त पदार्थरूप (भूत्वा) होकर (पशुइव) पशु के समान (स्वच्छन्द) स्वच्छन्दरूप से (आचेष्टते) चेष्टा करता है (पुन) किंतु (स्याद्वाददर्शी) स्याद्वाद से वस्तुतत्व को देखने वाला (यत) जो ज्ञान (पररूपत) पररूप से होता है (तत) वह ज्ञान (तत् न) ठीक अर्थात् सच्चा ज्ञान नहीं है (इति) इस प्रकार (विश्वात् भिन्नम्) समस्त पदार्थों से भिन्न (विश्वघटित) समस्त पदार्थों से घटित होता हुआ भी (अविश्व) समस्त पदार्थरूप नहीं तो भी (तस्य) उस पदार्थ के समुदाय रूप (स्वतत्व) निजतत्व को (स्पृशेत्) अनुभव करता है ॥८॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५०

वाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतोविष्वग्विचित्रोल्लसद् ।
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति ॥
एकद्रव्यतयासदाव्युदितयाभेदभ्रमध्वंसयन् ।
नैव ज्ञानमवाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी एकान्तवादी (वाह्यार्थग्रहणस्वभाव भरत) बाह्यपदार्थों के ग्रहण रूप स्वभाव के भारसे (विष्वग्विचित्रो ल्लसज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्ति) समस्त नाना प्रकार से शोभमान पदार्थों के आकार से नष्ट हो गई है शक्ति जिसकी ऐसा होता हुआ

(अभिन) सब तरह से (त्रुटयन्) टूटता हुआ (नश्यति) नष्ट हो जाता है (अनेकान्तवित्) अनेकान्तवादी ज्ञानी तो (एकद्रव्यतया) एक द्रव्य से (सदा) निरंतर (अव्युदितया) उदित रहने से (भेद्भ्रमं) भेद के भ्रम को (ध्वंसयन्) नाश करते हुए (एक) एक (अबाधिता नुभवन) बाधा रहित है अनुभव जिसका ऐसे (ज्ञान न पश्यति) ज्ञान को नहीं देखता ॥८॥

(शार्दूलविक्रीडित) ५१

ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचितिप्रक्षालनं कल्पयन्
नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानस्वतःक्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित्

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी एकान्तवादी (ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति) ज्ञेय पदार्थों के आकारों से कलंक को प्राप्त हुए अनेक आकार रूप से मलिन चैतन्य में (एकाकारचिकीर्षया) एक चैतन्यस्वरूप आकार का करने की इच्छा से अनेक आकारों के (प्रक्षालनं कल्पयन्) प्रक्षालन को करता हुआ (स्फुटं ज्ञानं अपि नेच्छति) अनेक आकाररूप स्पष्ट ज्ञान को भी नहीं चाहता अर्थात् ज्ञान का नाश करता है (अनेकान्तवित्) अनेकान्त के स्वरूप का ज्ञाता स्याद्वादी (वैचित्र्येऽपि अविचित्रतां) अनेकाकाररूप से विचित्र होने पर भी एकाकारता को (उपगतं) प्राप्त हुए (स्वतः क्षालितं पर्यायैः अनेकतां) स्वयमेव शुद्ध किये गये पर्यायों से अनेकाकारता को (तत् ज्ञानं परिमृशन् पश्यति) उस ज्ञान का स्पर्श करता हुआ अनुभव करता है ॥६॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५२

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चित
स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणमत्र समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (प्रत्यक्षालिखित स्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावंचित) प्रत्यक्ष प्रमाण से चित्रलिखित स्पष्ट और निश्चल पर द्रव्य के अस्तित्व में ठगाया गया (स्वद्रव्यानवलोकनेन) अपने आत्मद्रव्य के अस्तित्व को नहीं देखने से (परितः) परिपूर्णरूप से (शून्य) शून्य होता हुआ (नश्यति) नाश को प्राप्त होता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (स्वद्रव्यास्तितया) अपने आत्म द्रव्य के अस्तित्व में (निपुणं) भलीभांति (निरूप्य) आत्मद्रव्य को देखकर (सद्य) उसी समय ही (समुन्मज्जता) प्रगट हो रहे (विशुद्ध बोधमहसा) निर्मलज्ञानरूप तेज से (पूर्णोभवन् जीवति) परिपूर्ण होता हुआ जीवित रहता है अर्थात् नाश को प्राप्त नहीं होता ॥८॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५३

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः ।
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (पुरुष) आत्मा को (सर्व द्रव्यमय प्रपद्य) सम्पूर्ण द्रव्यमय स्वीकार कर (दुर्वासनावासित) दुनय की वासना से वासित होता हुआ (स्वद्रव्यभ्रमत) अपने आत्मद्रव्य के भ्रम से (परद्रव्येषु किल विश्राम्यति) पर द्रव्यों में प्रमाणरूप से विश्राम करता है अर्थात् पर में ही आत्मत्व को मानता है (स्याद्वादी तु समस्त वस्तुषु) स्याद्वादी तो समस्त पदार्थों में (परद्रव्यात्मना) परद्रव्यरूप से आत्मद्रव्य की (नास्तिता जानन) नास्तिता को अर्थात् अभाव को जानता हुआ (निर्मलशुद्धबोधमहिमा) निर्मल शुद्ध ज्ञान की है महिमा जिसमें ऐसे (स्वद्रव्य आश्रयेत्) निज द्रव्य का ही आश्रय लेता है ॥७॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५४

भिन्नक्षेत्रणिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठ सदा
सीदत्येव बहि पतन्तमभित पश्यन्पुमास पशु
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभस स्याद्वादवेदीपुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन्

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (भिन्नक्षेत्रणिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठ) भिन्न क्षेत्र में स्थित ज्ञेय पदार्थों के निश्चित ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्धरूप व्यापार में स्थित होता हुआ (बहि) बाह्य पदार्थों में (अभित) सब तरफ से (पतन्त) गिरने वाले (पुमास) आत्मा को (पश्यन्) देखता हुआ (सदैव) हमेशा ही (सीदति) दुखी होता है (पुन स्याद्वादवेदी) किन्तु स्याद्वाद का जानने वाला (स्वक्षेत्रास्तितया) अपने क्षेत्र में अपने अस्तित्व के द्वारा (निरुद्धरभस) अपने वेग को रोकने से (आत्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्ति) अपने क्षेत्र में ही ज्ञेयपदार्थों के निश्चित ज्ञेय

अविरत मत्वरूप पाशारूप शक्ति वाला (भजन् तिष्ठति) होता हुआ स्थित रहता है ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५५

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झना
त्तुच्छीभूयपशु प्रणश्यतिचिदाकारान्सहार्थैर्वमन्
स्याद्वादी तु वसनस्वधामनिपरक्षेत्रेविदन्नास्तिता
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षीपरान्

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी । (स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात) अपने क्षेत्र में स्थित होने के लिये भिन्न भिन्न विधान वाले पर क्षेत्र में स्थित रहने वाले पदार्थों को छोड़ने से (तुच्छ भूय) तुच्छ होकर (चिदाकारान्) चैतन्यरूप पदार्थों के आकारों को (अर्थैः सह वमन) पर पदार्थों के साथ वमन करता हुआ अर्थात् छोड़ता हुआ (प्रणश्यति) नाश को प्राप्त होता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (स्वधामनि वसन) अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ (परक्षेत्रे नास्तिता विदन) पर पदार्थ के क्षेत्र में अपने आत्म द्रव्य के अभाव को जानता हुआ (त्यक्तार्थः अपि) पर पदार्थों को छोड़ता हुआ भी (पर आकारकर्षी) पर पदार्थों के आकारों को खींचता हुआ (तुच्छता न अनुभवति) तुच्छता का अनुभव नहीं करता है ॥ ६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५६

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किंचनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छ पशु

अस्तित्वनिजकालतोऽस्यकलयन्स्याद्वादवेदीपुन पूर्णस्तिष्ठतिबाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वाविनश्यत्स्वपि

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (पूर्वालम्बित बोध्यनाशसमये) पूर्व समय में आलम्बन को प्राप्त हुए पदार्थों के नाश के समय में (ज्ञानस्य नाश विदन) ज्ञान के नाश को जानता हुआ (किंचनापि न कलयन) और कुछ भी नहीं जानता हुआ (अत्यन्त तुच्छ सन) अत्यन्त तुच्छ होता हुआ (सीदति एव) दुःखी ही होता है (पुन स्याद्वादवेदी) किन्तु स्याद्वाद का जानने वाला (निजकालत) अपने समय से (अस्य अस्तित्व कलयन्) इस आत्मा के अस्तित्व को जानता हुआ (बाह्यवस्तुषु) बाह्य पदार्थों में (मुहुर्भूत्वा) बार बार उत्पन्न होकर (विनश्यत्स्वपि) नाश को प्राप्त होने पर भी (पूर्ण तिष्ठति) परिपूर्ण रूप से स्थित रहता है ॥ १० ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २८७

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्यसत्वं बहि र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन्पशुर्नश्यति नास्तित्वपरकालतोऽस्य कलयन्स्याद्वादवेदीपुन स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन्

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (अर्थालम्बन काले) पदार्थों के आलम्बन के समय में (एव) ही (ज्ञानस्य सत्व कलयन्) ज्ञान के सद्भाव को जानता हुआ (बहिर्ज्ञेयालम्बनलालसेनमनसा) बाह्यपदार्थों के आलम्बन में अनुरागी चित्त से (भ्राम्यन् नश्यति) भ्रमण करता हुआ नाश को प्राप्त होता है (पुन स्याद्वाद

वेगी) किन्तु स्याद्वाद का जानन वाला (परकालत) पर द्रव्य के समय मे (अस्य नास्तित्व कलयन्) अपन आम द्रव्य के अस्तित्वाभाव को जानता हुआ (स्वातनित्यसहजज्ञानैकपु जीभवन्) अपने में स्थित नित्य अविनाशी स्वाभाविक ज्ञान का एक पुंज होता हुआ (आत्मनि निष्ठति) अपने में ही स्थित रहता है ॥ ११ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५८

विश्रान्त परभावभावकलनान्नित्यवहिर्वस्तुपु ।
नश्यत्येवपशु स्वभावमहिन्येकान्तनिश्चेतन ॥
सर्वस्मान्नियतस्वभावमभवन् ज्ञानाद्विभक्तोभवन्
स्याद्वादीतु न नाशमति सहजस्पष्टीकृतप्रत्यय १२

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी मर्था एकान्तवादी (परभावभाव कलनात्) पर पदार्थों के भावों में निज अनुभव के ज्ञान से (नित्य) निरतर (वहिर्वस्तुपु) बाह्य वस्तुओं में (विश्रान्त) विश्राम करता हुआ (स्वभावमहिमनि) निज भारती महिमा में (एकान्तनिश्चेतन) एकान्त रूप से जड होता हुआ (नश्यतिएव) नाश को ही प्राप्त करता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (सर्वस्मात्) सभी पदार्थों में (नियत स्वभावमभवन् ज्ञानात्) निश्चित अपने अपने भावों के उत्पन्न होने रूप ज्ञान से (विभक्त भवन्) पृथक होता हुआ (सहजस्पष्टीकृत प्रत्यय) स्वाभाविक प्रत्यक्ष किये गये ज्ञान रूप होने से (नाश) नाश को (न एति) प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५९

अध्यास्यात्मनिसर्वभावभवनशुद्धस्वभावच्युत
सर्वत्राप्यनिवारितोगतभय स्वैरपशु क्रीडति

स्याद्वादीतुविशुद्धएवलसति स्वस्य स्वभावंभरा-
दारूढ परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ।१३

अन्वयार्थ (पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (सर्वभावभवन) समस्त पर पदार्थों के भावों की उत्पत्ति का (आत्मनि) अपने आत्म द्रव्य में (अध्यारय) निश्चयकर (शुद्धस्वभावच्युत) अपने आत्मा के शुद्ध स्वभाव से च्युत हुआ (सर्वत्रापि) सभी अन्य पदार्थों में (अनिवारित) बेरुकावट (गतभय) निर्भय हो (स्वैर) इच्छानुसार (क्रीडति) क्रीडा करता है (स्याद्वादी तु स्वस्य स्वभावं भरात्) स्याद्वादी तो अपने स्वभाव के भार में (आरूढ) स्थित हुआ (पर-भावभावविरहव्यालोकनिष्कंपित । पर पदार्थों के भावों का अपने भावों में अभाव को देखने से निश्चल हुआ (विशुद्ध एव लसति) विशुद्धरूप से ही शोभित होता है ॥ १ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) ६०

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद् ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति
स्याद्वादीतुचिदात्मनापरिमृशंश्चिद्वस्तुनित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानंभवन्जीवति ।१४

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (प्रादुर्भाव विराममुद्रितवहद् ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्) उत्पत्ति और विनाशरूप गुणों के धारक ज्ञान के अंशों में नाना रूपता के निश्चय... ज्ञान से (क्षणभंगसंगपतित) क्षणभंगुर... (प्राय नश्यति) ...को प्राप्त होता है (

स्याद्वादी तो (चिद्वस्तुनित्योदितं) चैतन्यरूप से नित्य उदयरूप (चिद्वस्तु परिमृशन्) चैतन्यात्मक आत्म द्रव्य का निश्चय करता हुआ (टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं) टंकोत्कीर्ण घन स्वभावमहिमा स्वरूप ज्ञानरूप (भवन् जीवति) होता हुआ जीवित रहता है ॥ १४ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २६१

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नपशु किंचन
ज्ञाननित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वल
स्याद्वादीतदनित्यतापरिमृशश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्१५

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (टंकोत्कीर्ण विशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया ।) टंकोत्कीर्ण निर्मल ज्ञान के फैलाव रूप आकार स्वरूप आत्म तत्त्व की आशा में (उच्छलदच्छचित परिणत) उछलता हुआ स्वच्छ चैतन्य की परिणति में (भिन्न किंचन) भिन्न किसी द्रव्य आत्म द्रव्य का (वाञ्छति) चाहता है (स्याद्वादी तु) स्याद्वादी तो (नित्य ज्ञान अनित्यता परिगम अपि) नित्य ज्ञान के अनित्यता को प्राप्त होने पर भी (चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्) चैतन्य द्रव्य की प्रवृत्ति के क्रम से (तद् अनित्यता) उस ज्ञान की अनित्यता को (परिमृशन) निश्चय करता हुआ (उज्ज्वल आसादयति) निर्मल ज्ञान का ही स्वीकार करता है ॥१५॥

(अनुष्टुप) २६२

इत्यज्ञानविमूढाना ज्ञानमात्र प्रसादयन् ।
आत्मतत्त्वमनेकान्त स्वयमेवानुभूयते ॥१६॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार ([illegible]) [illegible] मोह को प्राप्त हुए प्राणियों के ([illegible]) [illegible] (ज्ञानमात्रं) मात्र स्वरूप (प्रसाधयन्) [illegible] हुआ (अनेकान्तः) अनेकान्त सिद्धान्त (स्वयमेव) [illegible] ही (अनुभूयते) [illegible] है जाता है ॥१६॥

(अनुष्टुप्) [illegible]

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम् ।
अलंघ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥१७

अन्वयार्थ—(एवं तत्त्वव्यवस्थित्या) [illegible] स्वरूप की [illegible] से (स्वयमेव) [illegible] (स्वं) [illegible] (व्यवस्थापयन्) स्थापन करता हुआ ([illegible]) [illegible] अर्थात् (जैन शासन) का [illegible] (अनेकान्त [illegible]) अनेकान्त रूप में स्थित हुआ ॥१७॥

(वसन्ततिलका) [illegible]

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि—
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं—

(न जहाति) नहीं छोड़ता है (इत्य क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं) इस प्रकार क्रम और अक्रम से होने वाले परिणामों से विचित्र (द्रव्यपर्यय मय) द्रव्य और पर्याय स्वरूप (चित्) चेतनात्मक (तत्) वह ज्ञान मय (वस्तु) वस्तु (इह अस्ति) इस लोक में है ॥१८॥

(वसततिलका) २६८

नैकान्तसगतदृशा स्वयमेव वस्तु
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्त
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ।
ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलघयन्त ॥१९॥

अन्वयार्थ—(स्वयमेव) यह वस्तु स्वयमेव ही (नैकान्तसगत दृशा) अनेकान्त रूप से प्राप्त हुई दृष्टि के द्वारा (इति) इस प्रकार (वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति) वस्तु तत्त्व की व्यवस्था को (प्रविलोकयन्त) देखने वाले (सन्त) सज्जन (अधिका) अधिक (स्याद्वाद शुद्धि) स्याद्वाद की शुद्धि को (अधिगम्य) जानकर (जिननीति) जिनन्द्रदेव के अनेकान्त सिद्धात को (अलघयन्त) उल्लघन न करते हुए (ज्ञानी भवन्ति) ज्ञानी होते हैं ॥१९॥

(वसततिलका) २६९

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पा ।
भूमि श्रयन्ति कथमप्यपनीत मोहा ॥
(अनु...न्ति सिद्धा ।
इत्यज्ञानविमूढाना ज्ञानमात्र ... ॥ २० ॥
आत्मतत्त्वमनेकान्त स्वयमेवानुभूय

अन्वयार्थ—(अपनीतमोहा) मोह रहित (ये) जो पुरुष (ज्ञानमात्रनिजभावमयीं) ज्ञान स्वरूप निज स्वभाव वाली (अकम्पां) अविचल (भूमिं) भूमि को (कथमपि) किसी भी प्रकार से (श्रयन्ति) आश्रय करते हैं (ते) वे पुरुष (साधकत्वम् अधिगम्य) साधकपने को स्वीकार कर (सिद्धा भवन्ति) सिद्ध होते हैं (मूढास्तु) अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तो (अमूम्) इस भूमि को (अनुपलभ्य) बिना प्राप्त किये ही (परिभ्रमन्ति) संसारभ्रमण करते हैं ॥ २०॥

(वसततिलका) २६७

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां ।
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ॥
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री—
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥२१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो पुरुष (इह) निज आत्म द्रव्य में (उपयुक्तः) लगा हुआ (अहरहः) प्रति समय (स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां) स्याद्वाद की कुशलता और निश्चल चारित्र से (स्वं) अपने आत्मा को (भावयति) अनुभव करता है (स एकः) वह एक (ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः) ज्ञान रूप नय और क्रिया नयों में एक दूसरे की बड़ी मित्रता के योग्य की गई (इमां) इस निज भाव रूप (भूमिं) भूमि का (श्रयति) आश्रय करता है ॥ २१॥

(वसततिलका) २६८

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ॥

आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप—
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तस्यैव) उस पुरुष के ही (चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहास) चैतन्य के पिण्ड का प्रचण्ड है विलास जिसमें ऐसे विकाश रूप हास वाला (शुद्ध प्रकाशभरनिर्भर सुप्रभात) शुद्ध प्रकाश के भार से भरे हुए उत्तम प्रातःकाल के तुल्य (आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप) आनन्द से भलीभांति स्थित निरन्तर निश्चल एक रूप वाला (अयं अचलार्चिः) यह निश्चल तेज पुञ्ज वाला (आत्मा उदयति) आत्मा उदय को प्राप्त होता है ॥२२॥

(वसन्ततिलका) २६६

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे ।
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ॥
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै ।
र्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभाव ॥२३॥

अन्वयार्थ—(स्याद्वाददीपितलसन्महसि) स्याद्वाद के प्रकाश से शोभित हो रहा है तेज जिसमें (शुद्धस्वभावमहिमनि) शुद्ध स्वभाव की है महिमा जिसमें ऐसे (इति) इस प्रकार का (प्रकाशे) प्रकाश (मयि) मेरे में (उदिते) उदय होने पर (बंधमोक्षपथपातिभिः) बंध और मोक्ष मार्ग में गिराने वाले (अन्यभावैः किं) परभावों से क्या प्रयोजन है (नित्योदयः) निरन्तर उदय रूप (अयं) यह (स्वभावः) स्वभाव (परं) सर्वोत्कृष्ट रूप से (स्फुरतु) स्फुरायमान रहे ॥२३॥

(वसंततिलका) २७०

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा ।
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः ॥
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेक—
मेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥२४॥

अन्वयार्थ—(चित्रात्मशक्तिसमुदायमयः) नाना प्रकार की निज शक्तियों का समुदाय रूप (नयेक्षणखण्ड्यमानः) नयों की दृष्टि से खंड रूप भिन्न हुआ (अयं आत्मा) यह आत्मा (सद्यः प्रणश्यति) तत्काल नाश को प्राप्त होता है यह प्रकार दृष्टि है (तस्मात्) इसलिये (अहं अनिराकृतखण्डं) मैं नहीं खण्डित हुए हैं खंड जिसके ऐसा (अखण्डं एकं) अखण्ड एक (एकान्तशान्तम्) एकान्त रूप से शान्त और (अचलंचित् महोऽस्मि) अचल चैतन्य रूप तेज वाला हूँ ॥ २४॥

(शालिनी) २७१

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्—
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२५॥

अन्वयार्थ—(यः अयं ज्ञानमात्रः भावः) जो यह ज्ञानस्वभाव है (सः) वही (अहं अस्मि) मैं हूँ (ज्ञेयः) आत्मा से भिन्न पदार्थ (ज्ञेयः) ज्ञेय हैं लेकिन (सः) वह ज्ञेय (ज्ञानमात्रः नैव) ज्ञान

स्वरूप नहीं है किन्तु (ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गत्) ज्ञेय पदार्थ के आकारों की ज्ञानरूप तरङ्गों में उछलता हुआ (ज्ञानज्ञेय ज्ञातृमत्) ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता रूप (वस्तुमात्र) वस्तु मात्र (ज्ञेय) ज्ञेय है ॥ २५ ॥

(पृथ्वी) २८०

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिदमेचकामेचकं ।
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम ॥
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः ।
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(मम तत्त्वं क्वचित् मेचकं लसति) मेरा आत्मतत्त्व कभी अनेकाकार मालूम होता है और (क्वचित् मेचकामेचकं) कहीं अनेकाकार और कहीं एकाकार मालूम होता है (पुनः क्वचित् अमेचकं) और कभी एकाकार मालूम होता है किन्तु वह (सहजं एव) स्वभावरूप ही है (तथापि तत् अमलमेधसां) तो भी वह निर्मल बुद्धिमानों के (मनः न विमोहयति) चित्तको विमुग्ध नहीं करता (परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं) क्योंकि वह परस्पर का अच्छी तरह से मिलाता हुई प्रगट रूप शक्तियों का समुदायमय (स्फुरत्) स्फुरायमान रहता है ॥ २६ ॥

(पृथ्वी) २७२

इतोगतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता—
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ॥

इत परमविस्तृत धृतमित प्रदेशैर्निजे ।
अहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुत वैभवम् ॥२७॥

अन्वयार्थ—(इत) एक तरफ (अनेकता) अनेकपने को (गत) प्राप्त हुआ (इत) एकतरफ (सदापि) निरंतर (एकता) एकताको (दधत्) धारण करता हुआ (इत) एकतरफ (क्षणविभंगुर) क्षणभंगुर (इत) एकतरफ (सदैव) निरंतर ही (उदयात्) उदय से (ध्रुव) ध्रुव (इत) एक तरफ (परम विस्तृत) परम विस्तारस्प (इत) एक तरफ (निजै प्रदेशै धृत) अपने प्रदेशों से धारण किया गया (आत्मन तत इद सहज) आत्मा का वह, यह स्वाभाविक (अद्भुत वैभव) विचित्र वैभव है (अहो) यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥ २७ ॥

(पृथ्वी) २७८

कषायकलिरेकत. स्खलतिशांतिरस्त्येकतो ।
भवोपहतिरेकत स्पृशतिमुक्तिरप्येकत ॥
जगत्त्रितयमेकत. स्फुरतिचिच्चकास्त्येकत ।
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुताद्भुत ।२८।

अन्वयार्थ—(एकत) एक तरफ (कषायकलि) कषायों की पीड़ा (स्खलति) है (एकत शान्ति अस्ति) एक तरफ शान्ति अर्थात् कषायों का अभाव है (एकत भवोपहति) एक तरफ संसार की पीड़ा है (एकत मुक्ति अपि स्पृशति) एक तरफ मुक्ति भी स्पर्श करती है (एकत जगत्त्रितय स्फुरति) एक तरफ तीनो जगत् स्फुरायमान है (एकत चित् चकास्ति) एक तरफ चतन्य ही शोभित

है इस तरह (आत्मन अद्भुतात् अद्भुत) आत्मा का अद्भुत से अद्भुत (स्वभावमहिमा विजयते) स्वभाव की महिमा विजय को प्राप्त हो ॥ २८ ॥

(मालिनी) २७५

जयति महजत्तेज पुंजमज्जत्त्रिलोकी ।
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एवस्वरूप ॥
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भ. ।
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एष ॥२९॥

अन्वयार्थ—(सहजतेज पुंजमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिल विकल्प) स्वाभाविक प्रकाश समुदाय में प्रतिबिम्बित तीन लोक के पदार्थों से स्फुरायमान हैं समस्त विकल्प जिसमें ऐसा होता हुआ भी (एक स्वरूप एव) एक स्वरूप ही है (स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भ) आत्मिक रस के विस्तार से परिपूर्ण अच्छिन्न—अर्थात् न्यूनता रहित तत्त्वों की है प्राप्ति जिसमें और (प्रसभनियमितार्चि) सर्व रूप निश्चित है तेज जिसका ऐसा (एष चिच्चमत्कार जयति) यह चैतन्य का चमत्कार जयशील हो ॥ २९ ॥

(मालिनी) २७६

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म—
न्यनवरतनिमग्न धारयद्ध्वस्तमोहम् ॥
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता—
ज्ज्वलतु विमलपूर्णनि.सपत्नस्वभाव ॥३०॥

अन्वयार्थ—(अविचलितचिदात्मनि) निश्चल चैतन्य स्वरूप आत्मा में (आत्मना) अपने द्वारा (अनवरतनिमग्नं) निरंतर लीन (आत्मानं) अपने को (धारयत्) धारण करता हुआ (ध्वस्तमोह) अंधकार का नाशक (निःसपत्नस्वभाव) समस्त वैरियों से शून्य है स्वभाव जिसका (विमलपूर्णं) निर्मल और परिपूर्ण (उदितं) उदय को प्राप्त हुआ (एतत्) यह (अमृत चन्द्रज्योति) अमृत रूप चन्द्रमा के समान प्रकाश (समन्तात् ज्वलतु) सब तरफ प्रकाशमान रहे ॥ ४० ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २७७

यस्माद्द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः
भुंजाना च यतोनुभूतिरखिलंखिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ॥

अन्वयार्थ—(यस्मात् पुरा स्वपरयो द्वैतं अभूत) जिस अज्ञान से पूर्व समय में अर्थात् अनादि से स्वय कहिये अपनी और पर का द्वैतरूप एकता हुए (यतः अत्र अन्तरं भूतं) जिस द्वैत से इस आत्मा में अन्तर्भूत हुआ (यतः) और जिस अन्तर से (राग द्वेषपरिग्रहे सति क्रियाकारकैः) रागद्वेषरूप परिग्रह के होने पर क्रिया और कारक (जातं) हुए (यतः) जिस क्रियाकारक से (क्रिया या अखिलं फलं भुंजाना अनुभूति) क्रिया के समस्त फल को भोगती हुई स्वानुभूति (खिन्ना) खेद को प्राप्त हुई (तत् अधुना विज्ञानघनौघमग्नं) वह अज्ञान इस समय विज्ञान घन समुदाय में

लान हुआ (किल किंचित् किंचित्न) निश्चय म कुछ भी मालूम नहीं हाना ॥ ३१ ॥

(उपजाति) २७८

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्वै—
व्याख्याकृतेयं समयस्यशब्दैः ॥
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरे ॥३२॥

अन्वयार्थ –(स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्वैः) अपनी शक्ति से प्रगट कर दिया है समस्त वस्तु के स्वरूप को जिन्होंने ऐसे (शब्दैः) शब्दों से (समयस्य) आत्मा और समयसार नामा शास्त्र की (इयं) यह (व्याख्या कृता) व्याख्या की गई है (स्वरूपगुप्तस्य) आत्मस्वरूप में लीन (मम) मुझ (अमृतचन्द्रसूरे) अमृतचन्द्र आचार्य का (किंचित् कर्तव्यमेव न अस्ति) कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥ ३२ ॥



ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजी कृत

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥
पाये अनन्ते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर धर्म नहिं पहिचानकर।
भव बन्ध कारक सुख प्रहारक विषय में सुख मानकर॥
निज पर विवेचक ज्ञानमय सुखनिधि सुधा नहिं पानकर॥१॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञानकला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥
रुचि लगी हित में आत्म के, सत संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा॥
प्रिय वचन की हो टेव गुणि गण गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन मन दोष वादन में भगै॥२॥

अब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममता मय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥
धर कर दिगम्बर रूप जब, अठबीस गुण पालन करूँ।
बाईस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारण करूँ॥
तप तपूं द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोक नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ॥३॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल लहि, चारित्र क्षायिक आचरूँ॥
आनन्द कन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै अमर कब सुखद दिन, 'जब' दुखद भवसागर तिरूँ॥

मुद्रक—
त्यागी फाइन आर्ट प्रेस
कूचा खुशालराय दिल्ली